CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'श्रीकृष्ण-सन्देश' के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिक्य, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोध जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

● नियम : उद्देश्यमें कथित विषयोंसे संबद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छांट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें न छापनेका संपूर्ण अधिकार सम्पादकका है। अस्वीकृत लेख बिना मांगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक ही पृष्ठपर बायें हाशिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख 'सम्पादक' 'श्रीकृष्ण-सन्देश' रू० नं० ६, केलगढ कालोनी, जगतगंज, वाराणसीके पतेपर भेजें।

● 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एकबार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चंदेमें उनके जीवनभर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मिलता रहेगा।

ग्राहकको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनि-आर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

● विज्ञापन : इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता।
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

प्रवर्तक

ब्रह्मलीन श्री जुगलकिशोर बिरला

सम्मानित

● सम्पादक-मण्डल

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

डा० विद्यानिवास मिश्र

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

डॉ० भगवान् सहाय पचौरी

संख्या ●

वर्ष : ७, अङ्क : ७

फरवरी, १९७२

श्रीकृष्ण-संवत् : ५१९७

● सम्पादक

गोविन्द नरहरि वैजापुरकर

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

शुल्क ●

वार्षिक : ७ रु०

आजीवन : १५१ रु०

प्रबन्ध-सम्पादक

देवधर शर्मा

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अ नु क्र म

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मासिक व्रत, पर्व एवं महोत्सव

[संवत् २०२८ फाल्गुन शुक्ल प्रतिपद् १५ फरवरी '७२ से चैत्र कृष्ण अमावास्या १५ मार्च १९७२ तक]

फरवरी : १९७२ ई०

तिथि	वार	व्रत-पर्व
१८	शुक्र	वैनायकी गणेश चतुर्थी
२५	शुक्र	आमलकी एकादशी व्रत, सबके लिए।
२६	शनि	प्रदोष-व्रत।
२८	सोम	होलिका दहन। पूर्णिमा-व्रत।
२९	मंगल	वसन्तोत्सवी घुरड्डी।

मार्च : १९७२ ई०

तिथि	वार	व्रत-पर्व
३	शुक्र	संकष्टी गणेश चतुर्थी-व्रत।
८	बुध	शीतलाष्टमी।
११	शनि	पापमोचिनी एकादशी-व्रत, सबके लिए।
१३	सोम	प्रदोष-व्रत। मासशिवरात्रि-व्रत। मीनसंक्रान्ति।
१५	बुध	अमावास्या, दर्शश्राद्ध।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान :

प्रत्यक्षदर्शियोंके भावभीने शब्द-सुमन

(फरवरी १९७२)

★

भगवान् श्रीकृष्णलीला पुरुषोत्तमको कोटिशः नमस्कार ।

जनार्दनदत्त शुक्ल

अध्यक्ष राजस्व परिषद उ० प्र०, लखनऊ

आज श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका दर्शन करके बड़ा आनन्द हुआ । अपनी भारतीय संस्कृतिके उत्थानके लिए इस प्रकारके स्थानोंका जीर्णोद्धार अत्यन्त आवश्यक है । श्री बिरलाजी एवं श्री डालमियाजीका ऐसे कार्योंमें उत्साह तथा सहकार अत्यन्त अभिनन्दनीय एवं अनुकरणीय है । भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें ऐसे कार्य करनेको उत्साह एवं आरोग्य प्रदान करें । यही मेरी शुभेच्छा है ।

गोस्वामी मुरलीधरलालजी

बोरीवली, बम्बई ।

भगवान्‌की जन्मभूमिका निर्माण देशके ही नहीं, मानव जातिके पुनर्जागरणका मूर्त संकल्प है । हम सब इसके सहभागी बनें, यह हमारा और इस पीढ़ीका सौभाग्य है ।

एस० के० शिन्दे (आई० ए० एस०)

प्रशासक, इन्दौर नगर पालिका

निगम, (म० प्र०)

मुझे आज बहुत हर्ष एवं सन्तोष प्राप्त हुआ है कि मैं श्रीकृष्ण भगवान्‌के इस पवित्र पावन जन्मस्थानपर अपने पलटनके जवानोंके साथ आया हूँ । मुझे इस पवित्र स्थानसे बड़ी प्रेरणा मिली है । मेरी शुभकामना है कि यह स्थान और भी आकर्षक एवं उन्नत बने । जय श्रीकृष्ण भगवान्‌की ।

कैप्टन विपिनचन्द्र भट्ट

१११, इन्फैन्ट्री बटालियन (टी० ए०)

द्वारा ५६ ए० पी० ओ०

भगवान् श्रीकृष्णका जन्मस्थल हिन्दू नर-नारियोंके लिए प्रेरणास्रोत है । यहाँ आकर चित्त और मनको तो शान्ति मिलती ही है, साथ ही योगेश्वर कृष्णकी शत-शत स्मृतियाँ उभरकर भाव-विभोर कर देती हैं ।

पी० एस सौंधी

सेकेण्ड आफिसर

आर० ई० एस०, एच० एस० स्कूल

दयालबाग, आगरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हम लोग ४१८ एन० सी० सी० कैडिट्स तथा १७ आफिसर्स एवं पी० आई० स्फाठने ट्रस्ट द्वारा निर्मित श्रीमती कृष्णादेवी डालमिया अन्तर्राष्ट्रीय अतिथिगृहमें तीन दिवस विश्राम किया तथा यहांके स्वच्छ तथा शान्त वातावरणसे बहुत प्रभावित हुए। ट्रस्ट द्वारा दी गयी सुविधाओंके लिए हम अपना आभार प्रकट करते हैं।

नवलसिंह भदोरिया
सेकेण्ड आफिसर
२५० जे० डी० ट्रुप एन० सी०
१५ यू० पी० बटालियन, आगरा

Most wonderful and peaceful. It is holy and neat.

K. G. Patel
Sahisbury, Rhodesia
S. Africa

From very far we arrived here where one temple forever will satisfy Krishna.

Patuzio Costa
Italy

Impressive with peaceful intonations.
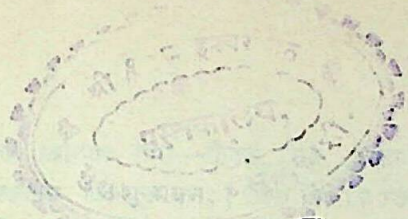
Paul Krischewbaum
U. S. A.

I have travelled Hindustan from the Himalyas to the South and though I cannot say that the inspiration obtained from this Yatra has been as great as that of say Amer Nath after which yatra I become Shiv Poojari. I must say that the vibrations inherent in the sanctity of ShriKrishna Janam-Bhoomi have filled me with great inner peace countering the outer rush and bustle that Mathura Bazar had just given me. Jai Radhe Shyam.

R. J. Selby (Shambhudas)
22, Hill View Godns–1
London, N. W. 4 England

We visited this temple and were much impressed. This is a very clear indication of our old culture and tolerance.

Corporal N. B. Singh
L. A. C. B. Singh
C. P. L. Mazumdar
Air Force, Poona–32

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

[library stamp, illegible]

श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

वर्ष : ७] मथुरा, फरवरी १९७२ [अङ्क : ७

मुझसे प्रेरणाएँ लो

संसारमें जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, जब-जब सुनीति और सदाचारका लोप होकर दुर्नीति और दुराचारका बोल-बाला हो जाता है; तब-तब मैं इस स्थितिको बदलने—इसका निवारण करनेके लिए अपने आपको सगुण-साकार रूपसे प्रकट कर लेता हूँ। इससे तुम्हें यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि संसारमें धर्म और सदाचारका लोप न होने पाये। इसके लिए तुम्हें स्वतः धर्मनिष्ठ और सदाचारी बनना होगा और अपने आचार-व्यवहारसे दूसरोंको भी प्रेरितकर उन्हें धर्मपरायण और सदाचारी बनाना होगा।

धर्म एक धारक तत्त्व है, कोई मत, मजहब या सम्प्रदाय नहीं। इस धारक तत्त्वका नाश हो जाय तो संसार क्षणभर भी टिक नहीं सकता। उदाहरणके लिए देखो, सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि धर्म हैं। ये किसी जाति या सम्प्रदायके धर्म नहीं, मानवमात्रके धर्म हैं। यदि सत्य मिट जाय और मिथ्याचार फैल जाये, अहिंसाकी भावना दूर हो जाय और सभी लोग खूँखार हिंसक बन जायें तथा अस्तेय धर्मको मिटाकर चोरी, डकैती या लूटपाटका व्यापक प्रचार हो जाय तो सर्वत्र मात्स्यन्यायकी प्रवृत्ति हो जायगी। जैसे बड़ी मछली छोटी मछलियोंको निगल जाती है, वैसे ही जिसका वश चले वही दूसरोंको खा जाय। संसारमें भीषण नरसंहार वे ही पिशाच प्रकृतिके लोग करते हैं, जो धर्म और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सदाचारसे कोसों दूर हैं। बलात्कार, व्यभिचार, चोरी डकैती—सभी अधर्मकी देन हैं। हम धर्म-निरपेक्ष होकर धर्मका पल्ला छोड़कर जी नहीं सकते। जब मनुष्यकी मानवता नष्ट होती है, तब वह दानव बन जाता है, अपने ही समान आकृतिवाले लोगोंके रक्तका पिपासु हो जाता है और उन अबलाओंपर भी अत्याचार करने लग जाता है, जो धर्मकी दृष्टिसे उनकी सगी माँ, बहन और पुत्रियोंके समान हैं।

जो इस दानवता या अधर्म दबानेके लिए आगे बढ़ते और अपने प्राणोंकी बलि देनेमें भी नहीं हिचकते, वे लोकवन्द्य महात्मा और धर्मात्मा हैं। मैं साधु पुरुषोंकी रक्षाके लिए अवतार ग्रहण करता हूँ। इससे तुम्हें यह शिक्षा मिलती है कि तुम भी सज्जनोंका संरक्षण करो। सज्जनोंका जीवन धर्म और सदाचारसे पूर्ण होता है, उनके संरक्षणसे संसारमें धर्म और सदाचारके भाव दृढ़ होते एवं फैलते हैं तथा मानवताकी सर्वतोमुखी उन्नति होती है। इससे सर्वत्र शान्ति और सुखका संचार होता है। इसलिए जहाँ भी दीन-दुर्बल और निरीह लोगोंको सताया जाय, सत्ताके मदसे उन्मत्त होकर दूसरे सहस्रों निहत्थे लोगोंके रक्तसे होली खेली जाय, कराहती मानवतापर दुर्दान्त पैशाचिकताका ताण्डव होने लगे वहाँ प्रत्येक आस्तिकको संघबद्ध होकर उस अनय और अत्याचारके विरुद्ध युद्ध छेड़ देना चाहिए। दुष्टोंका दमन शान्ति-स्थापनका प्रथम चरण है। इसकी कदापि उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः मेरे अवतारका उद्देश्य दुष्कर्मियोंका विनाश भी है : **विनाशाय च दुष्कृताम्।** इसके बिना साधु परित्राण या सज्जन-संरक्षण असम्भव है। इस प्रकार अनुरोधी तत्त्वके संरक्षण तथा विरोधी तत्त्वके संहरणसे धर्मस्थापना सम्भव हो पाती है।

धर्मस्थापनाका यह अर्थ नहीं कि किसी मजहब या सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा की जाय। इसका तात्पर्य उन धारक तत्त्वोंकी प्रतिष्ठासे है, जिनके बिना मानवता या मानव-जगत् टिक नहीं सकता।

यदि मेरे अवतारके उद्देश्य और रहस्यको भलीभाँति समझकर जगत्के लोग उपर्युक्त शिक्षा या प्रेरणा ले सकें तो संसारमें धर्मका, सुख और शान्तिका राज्य हो जाय। सबको समान रूपसे समुन्नत होनेका अवसर मिले। सर्वत्र मैत्री और सहयोगकी भावना बढ़ जाय। कहीं क्षणभरके लिए भी रागद्वेषकी विषलता फैलने न पाये। फिर तो पृथ्वीपर ही स्वर्ग उतर आये। मानव ही देवता और मानवलोक ही देवलोक बन जाय।

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री ... पुस्तकालय

वसंत-गीत

देख रही राह मुग्ध,
मधुवन की साधिका।

१.
वन-उपवन के पथपर,
हाथ धरे मनमथपर।
आओ ऋतुराज चढ़े—
मलयानिलके रथपर
सौरभ - मकरंद - सिक्त—
हो रही रसाधिका॥

२.
कमलों के जाल खिले,
मानस - मराल खिले।
सज मंजुल मंजरीसे
तरुवर रसाल खिले।
विहँस उठे माधवी—
तुम्हारी समाराधिका॥

३.
सिर धारे मोर - पखा,
फाल्गुन के प्राण-सखा।
आओ रसराज तुम्हें—
बाँध किसने है रखा।
टेर रही कुँज - कुँज—
पिक - बैनी राधिका॥

—श्री 'राम'

●

● समुद्र किसी नालेसे नहीं कहता कि तू गन्दा है। यही कहता है कि 'मेरी तरफ आ जा!'

● सेवा पाससे, आदर दूरसे, ज्ञान भीतरसे।

● सुस्वादु रसोई पकाओ और अस्वादसे खाओ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैंने बापूसे जो सीखा...

कुल जीवन-साधना : ईश्वरकी खोज

श्री आचार्य विनोबा भावे,

★

[अभी-अभी देशभर मनायी गयी बापू-निर्वाण-तिथिके सन्दर्भमें उनका यह शाश्वत सन्देश उनके सुयोग्य शिष्यके शब्दोंमें निश्चय ही प्रेरणादायी सिद्ध होगा ।]

बापू कहते थे कि उनकी कुल जीवन-साधना—सत्याग्रह आदि काम परमेश्वरकी खोजके लिए ही हैं। प्रायः ईश्वरकी खोज करनेवाले एकान्तमें ध्यान-धारणा आदि करने जाते हैं। लेकिन बापू एकान्तमें नहीं गये, लोगोंके बीच ही काम करते रहे। यह ठीक है कि वे ध्यान, प्रार्थनाके लिए पन्द्रह-बीस मिनट निकालते थे, पर कहा यही करते।

'ध्यान तो हमारे काममें हर क्षण होना चाहिए और एकान्त जनताके बीच काम करते-करते प्रतिक्षण मिलना चाहिए। एकान्तमें हम जाते हैं तो मन घूमने लगता है। फिर वह कैसा एकान्त हुआ ? सच्चा एकान्त तो वह होगा। जहाँ हम मनसे अलग हों।'

इसीलिए वे मनसे अलग होकर सदैव जनसेवामें एकान्तका अनुभव करते और कहते कि 'मेरा जीवन ईश्वरकी खोज और ईश्वर-दर्शनके लिए ही है।'

गुण-ग्रहणसे ईश्वर-दर्शन

आखिर ईश्वर-दर्शन क्या है, यह ठीकसे समझ लेना चाहिए। हिन्दुस्तानमें ईश्वरके लिए बहुत अधिक भक्तिभाव पाया जाता है। चीनी लेखक 'लीन यु टांग'ने तो लिखा है कि 'हिन्दुस्तान गॉड इण्टाक्सिकेटेड लैंड (ईश्वरसे अभिभूत भूमि) है।' बात सही भी है, लेकिन उस ईश्वरकी खोज किस तरह हो ?

मानना होगा कि ईश्वर गुणमय है—सत्य, प्रेम करुणा आदि मंगलमय गुण उसमें भरे पड़े हैं। इन सभी गुणोंकी परिपूर्णता ही 'ईश्वर' है। जो-जो मनुष्य सामने आते हैं, उनमें गुण-दर्शन होना चाहिए। यदि हमें किसीमें दोषोंका दर्शन होता है तो वह 'मायाका ही दर्शन' कहना होगा, 'ईश्वर-दर्शन' नहीं। किसीमें गुण और दोष दोनोंका दर्शन हुआ तो कहना होगा कि 'माया और ईश्वरका थोड़ा-थोड़ा मिश्र-दर्शन' हुआ। वह भी स्वच्छ दर्शन नहीं गिना जायगा। स्वच्छ दर्शन तो तब होगा, जब हमें हरएकको देखकर गुणोंका ही दर्शन हो।

ईश्वरका एक-एक अंग एक-एक गुणके रूपमें प्रकट है और जो दोष दीखते हैं वे मायाके ऊपरी छिलके (आवरण) हैं, जैसे कि किसी बीजपर छिलका हुआ करता है। मायाके उन आवरणोंको भेदकर स्वच्छ-शुद्ध दर्शन होना चाहिए। अलग-अलग गुणोंका दर्शन होना चाहिए। इस तरह ईश्वरका एक-एक अंश देखनेको मिलेगा, तो उसके बाद उसका समग्र दर्शन भी हो सकेगा। अतः हमेशा गुण-ग्रहण, गुण-चर्चा और गुण-स्मरण ही होना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहिए। दोष-ग्रहण, दोष-चर्चा और दोष-स्मरण कतई नहीं-करना चाहिए। इसीलिए हमने कहा : "अनिन्दाका 'व्रत' लेना चाहिए।"

हमें किसीका दोष दीखता है तो वह हमारा ही दोष है, यह मानना चाहिए। उसकी निन्दा करना दूसरा दोष होगा और उसके पीछे उस दोषकी चर्चा या निन्दा करना तीसरा दोष। इस तरह एकके बाद एक दोषका सम्पुट चढ़ता जायगा तो गुण-दर्शन होना संभव ही नहीं। फिर, गुण-दर्शन न हुआ तो ईश्वर-दर्शन भी लुप्त हो जायगा। इसीलिए हमें अपने भी दोषोंका दर्शन नहीं करना चाहिए। अपने गुणोंका ही दर्शन करना चाहिए। इस तरह सर्वत्र गुण-स्तवन, गुण-दर्शन और गुण-वर्धन होना चाहिए। यही 'भगवान्‌के गुणोंका स्तवन' है।

हम सत्य, प्रेम, करुणा कहा करते हैं। जहाँ-जहाँ हमें सत्यका अल्प भी दर्शन हुआ, वहाँ ईश्वरका ही दर्शन हुआ। बालूके कण पड़े हैं और उनमें थोड़े-से शर्करा-कण भी। पर चींटी उनमें से शर्करा-कण ही चुन लेती है। इसी तरह हम सत्यका अल्प भी दर्शन ले लिया करें। कहीं प्रेमका दर्शन हुआ, कहीं करुणाका दर्शन हुआ तो उसे भी ले लें। कहीं कुछ अच्छा दीखा तो उसे तत्काल उठा लें। इस तरह हरएकका गुण-ग्रहण करते-करते हमारा हृदय गुण-भण्डार बन जायगा। तब हमें भगवान्‌का परिपूर्ण दर्शन होगा।

इसीलिए बापू कहा करते कि 'मैं कोशिशमें हूँ कि परमात्माका परिपूर्ण दर्शन हो। माया-कवच दोषका दर्शन न हो।' आज हालत यह है कि हमें गुणोंका दर्शन होता ही नहीं, दोषोंका ही होता है। दोष ही सामने आते हैं। वे होते ही हैं, ऐसा भी नहीं। जबतक मनुष्यके हृदयमें प्रवेश नहीं होता, तबतक उसमें बुराई ही दीखती है। कारण, हेतुका पता कहाँ लगता है ? कानूनमें भी अपराधीको सन्देहका लाभ दिया जाता है, जिसे 'बेनिफिट ऑफ डाउट' कहते हैं। जबतक हेतुका दर्शन नहीं होता, तबतक उसे अपराधी नहीं कह सकते। अगर एक-एक मनुष्यके दोषोंके परीक्षक बनते रहें तो हमें दूसरा धन्धा ही न रहेगा। हमारा हृदय सबके दोषोंका भण्डार बन जायगा। उससे परमेश्वरका आच्छादन हो जाता है। यानी मायाके आच्छादनके कारण परमेश्वरका दर्शन ही नहीं हो पाता।

इस तरह स्पष्ट है कि भक्तिके बिना परमेश्वरकी खोज, उसका दर्शन नहीं हो सकता। और गुण-दर्शन तथा गुण-विकासके बिना भक्ति नहीं हो सकती।

गुण-ग्रहणसे गुण-विकास

सामनेवालेमें जो गुण हों, उनका दर्शन करना चाहिए। उन्हें स्वीकार कर अपने हृदयमें स्थान देना चाहिए। इसीका नाम है, गुण-ग्रहण। फिर उस गुणका विकास करना चाहिए। हम सामनेवालेके गुण अपनी हृदय-भूमिमें बोयें। किसान खेतमें एक बीज बोता है तो वह चौगुना, सौ-गुना होकर उसे मिलता है। हम भी अपनी मनोभूमि शुद्ध करें और उसमें सामनेवालेके गुण बो दें तो वे शतगुणित हो उठेंगे। इसीका नाम है गुण-विकास। प्रथम गुण-दर्शन, फिर गुण-ग्रहण और तदनन्तर गुण-विकास—यही है भक्तिकी प्रक्रिया। इसी प्रक्रियासे सर्वत्र छिपी परमेश्वरकी हस्तीका दर्शन और परिचय हो सकेगा। ●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सांस्कृतिक नव-चेतनाका अरुणोदय

श्री 'औद्वाहि'

★

भारतके पूर्वमें 'बंगला-देश'के रूपमें साकार भारतकी समन्वयात्मक संस्कृतिकी नव-चेतनाका अरुणोदय आज समग्र विश्वको नवजागरणका सन्देश सुना रहा है। इस नवचेतनाका स्रोत बहानेवाले महात्मा गांधी आज यशःशरीर हैं। सचमुच आज २५ वर्ष बाद उनकी नोआखालीकी यात्रा फलीभूत हो रही है। इस अरुणोदयका शंखनाद फूँकनेका एकमात्र श्रेय शेख मुजीबुर्रहमानको दिया जा सकता है।

लक्ष्मीवाहनोंको यह अरुणोदय कभी पसन्द नहीं आया। आधुनिक विश्वके संरक्षक होनेका दम भरनेवाले दो बड़े-बड़े देश इस अरुणोदयसे घबड़ा उठे। कागजों और इण्टरप्राइजी नकली बादलोंसे ये इसे ढँक देनेकी सोचने लगे। उनको यह नहीं मालूम कि जिनके दिलोंमें आन्तरिक शक्ति उद्बुद्ध हो चुकी हो, उनका बड़ीसे बड़ी दानवी शक्ति भी कुछ बिगाड़ नहीं सकती। दिल्लीके रामलीला-मैदानमें संगीतमय लयमें गाये गये गीतकी प्रत्येक मूर्छनासे इस राष्ट्रके कण-कणमें इस आन्तरिक शक्तिके उद्वेलित हो उठनेकी स्पष्ट अभिव्यक्ति आँकनेकी क्षमता केवल अभिधाकी भाषा ही बोल-समझ पानेवाले विश्व-संस्कृतिके इन नये ठेकेदारोंमें शायद नहीं है।

रक्षामन्त्री श्री जगजीवनरामके कथनानुसार 'इस देशकी संस्कृति तीन हजार वर्ष पुरानी है। आधुनिक विश्व इससे पुरानी इसे माननेको तैयार नहीं।' इस उक्तिका केवल इतना ही अभिप्राय है कि इससे पुरानी संस्कृतियाँ और सभ्यताएँ आज विद्यमान नहीं और विश्वकी विद्यमान प्राचीन संस्कृतियोंमें यही सबसे प्राचीन है। युद्धवन्दियोंके सम्बन्धमें आज जेनेवा-समझौतेकी चर्चा की जाती है। हमारे स्थलसेनाध्यक्ष भी जब शत्रुको हथियार डाल देनेकी सलाह देते हैं, तो भविष्यमें उनके साथ मानवसुलभ व्यवहार करनेकी साक्षीके रूपमें इसी समझौतेकी दुहाई देते हैं। वे भूल जाते हैं कि भारतीय संस्कृतिमें युद्धवन्दियोंके साथ सद्व्यवहारकी परम्परा बहुत पुरानी है। जेनेवा-समझौतेके जनक राष्ट्र अभी इससे बहुत कुछ सीख सकते हैं। आधुनिक सभ्य विश्व अभी तो जेनेवा-समझौतेका भी पूरी तरह पालन कर पानेमें अपनेको असमर्थ पाता है। यह जेनेवा-समझौता नहीं, भारतीय संस्कृतिका प्रभाव है कि बंगला-देशमें युद्ध बन्द हो जानेके बाद एक लाख युद्धबन्दी पूरी तरह सुरक्षित हैं और सरकारके इस निर्णयको भारतीय जनताका पूरा समर्थन प्राप्त है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रसंगवश यह स्मरण दिलाना आवश्यक है कि पृथ्वीराज चौहानने अपने शत्रुओंको अनेक बार क्षमादान किया था, किन्तु उसका अन्तमें क्या हुआ ? जनाब जुल्फीकार अली भुट्टो साहब हिन्दुस्तानके साथ एक हजार सालतक जंग करनेकी बात कहते रहते हैं। आकाशवाणी इसका मजाक उड़ाती है। पर ऐसा करते समय हम भूल जाते हैं कि जो चीज उन्हें यह कहनेके लिए प्रेरित करती है, उस भावनाने एक हजार वर्षतक भारतीय संस्कृतिसे युद्ध किया है और आधुनिक सभ्य-संसारका मानस यदि परिष्कृत नहीं होता, तो भुट्टो साहबका कहना कोई गलत बात नहीं। इतिहासकी पुनरावृत्ति नहीं होती, किन्तु उससे शिक्षा तो ग्रहण की ही जाती है।

सम्राट् हर्षके बाद भारतीय संस्कृतिका तेज घटने लगा था। भगवत्पाद शंकराचार्य भी इसके घटते तेजको रोक न सके। किसी आधुनिक विचारकने लिखा है कि पैगम्बर मुहम्मद साहब और शंकराचार्यका आविर्भाव लगभग एक ही समय हुआ। आगेके वर्षोंमें इसलामने विश्व-विजय की, किन्तु भारत अपनी स्वतन्त्रता भी सुरक्षित न रख सका। ऊपरसे देखनेपर यह आक्षेप सही मालूम देता है। किन्तु इस प्रसंगमें हमें भगवद्गीताके अठारहवें अध्यायके दो श्लोक याद आते हैं, जिनमें सात्त्विक और राजस सुखकी व्याख्या की गयी है। किसी समय बौद्ध-धर्मने भारतीय संस्कृतिमें महत्त्वपूर्ण योगदान किया था, किन्तु शंकराचार्यके समयतक उसकी जीवनी शक्ति समाप्तप्राय हो गयी। अतः शंकराचार्यने तत्कालीन विभिन्न सम्प्रदायोंमें समन्वय स्थापित कर स्मार्त-धर्मकी प्रतिष्ठा की। वैष्णव आचार्यों और सन्तोंके अमृतमय उपदेशोंसे सिंचित यह नयी संस्कृति फली-फूली। इतिहास साक्षी है कि इसी संस्कृतिकी छत्रच्छायामें भारतवर्षने अपनी आत्माको मरने नहीं दिया और इसलाम-धर्ममें भी सहिष्णुताके बीज बोये। इसके विपरीत शंकराचार्यके कालमें लड़खड़ाता बौद्ध-धर्म इसलामका आक्रमण सह न सका और इस प्रकार अपने मूल देशमें एक प्रकारसे उच्छिन्न सा हो गया।

इसलामकी असहिष्णुता कहीं-कहीं पाशविक क्रूरताके रूपमें उभड़ी है। इसका ताजा उदाहरण बंगला-देशमें देखा जा सकता है। यह दोष इसमें कहाँसे आया, इसका अन्वेषण करनेकी अपेक्षा आज इसमें परिष्कारकी ही नितान्त आवश्यकता है। यदि अब भी इसलाममें धार्मिक उन्माद बना रहा तो नये विश्वके निर्माणमें उसका कोई भविष्य नहीं रह जायगा। नये विश्वका गठन विश्वधर्म और विश्व-संस्कृतिके आधारपर होगा और इस विश्व-संस्कृतिके निर्माणमें भारतीय संस्कृतिका महत्त्वपूर्ण अंशदान होगा। नये विश्वके निर्माणमें इसलाम पिछड़ता जा रहा है और शंकराचार्यके समयके बादसे निस्तेज हो रही भारतीय संस्कृति आज इसलामके अनुयायियोंको उन्हींकी क्रूरतासे बचा रही है। यही गीताका वह सात्त्विक सुख है, जिसका वर्तमान कष्टमय होते हुए भी भविष्य उज्ज्वल रहता है। भारतीय संस्कृतिकी यह नवचेतना अभिनन्दनीय है। इसके प्रातःकालीन मंगलमय भेरी-निनादसे पीकिंग-पिण्डी-वाशिंगटन धुरी आज काँप उठी है।

पीकिंग आधुनिक विश्वके, विशेषकर पाकिस्तान जैसे भारतके पड़ोसी देशोंके सामने वृहत्तर भारतका होवा खड़ा करना चाहता है। लेकिन इतिहास साक्षी है कि भारत इसलामकी तरह कभी भी, कहीं तलवार लेकर नहीं गया। भारतका सन्देश सुख-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समृद्धि और सर्वोपरि परम शान्तिका रहा है। यह सन्देश चीन और जापानको भी सुनाया गया, किन्तु उसे भुलाकर चंगेज, हलाकूके उत्तराधिकारी माओके चीनने कुछ वर्ष पहले तिब्बतमें वहांकी संस्कृति और मानवताको उसी प्रकार कुचला, जिस प्रकार नादिरशाहके वंशज याहियाके दरिन्दोंने बंगला-देशमें अभी किया। बंगला-देशकी आवाज तो हम सुन सके, किन्तु हमारी अकर्मण्यता और बुजदिलीके कारण 'तिब्बती मानवताकी करुण चीत्कार' विश्वकी कर्णशष्कुलीसे टकराकर आकाशमें विलीन हो गयी। कुछ हजार तिब्बतियोंको भारतमें शरण मिल सकी, किन्तु हम उन्हें एक हजार वर्ष पूर्वके भारतमें रखना चाहते हैं। उनको गंगाकी पवित्र धाराके समान सतत प्रवहमान भारतीय संस्कृति एवं गांधीवादका परिचय न कराकर और स्वतन्त्र तिब्बतसे इनका ध्यान हटाकर यदि भारतमें मार्क्सवादकी पृष्ठभूमिमें एक हजार वर्ष पूर्वके बौद्ध-धर्मके पुनरुज्जीवनकी शिक्षा दी गयी, तो वह तिब्बत और भारत दोनों ही देशोंके साथ भारी गद्दारी होगी।

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद भारतमें एक ऐसा वर्ग पनप रहा है, जिसे भगवद्गीताका नाम सुनकर नाक-भौं सिकोड़ने और 'धम्मपद'के नामपर पुलकित हो उठनेकी आदत पड़ गयी है। बौद्ध-धर्म और मार्क्सवादमें ही इन्हें विश्वशान्तिका सन्देश सुनायी देता है। किसी शायरने लिखा है। **मजहब नहीं सिखाता आपसमें वैर रखना।** किन्तु धर्मोंका इतिहास द्वेष, घृणा, क्रूरता और रक्तपातसे रँगा हुआ है। भारतीय संस्कृतिकी यह देन है कि वह आपसमें वैर रखनेको नहीं, सुहृद्भावसे रहनेकी शिक्षा देती है। इसके विपरीत मार्क्सवादकी सारी इमारत ही वर्ग-संघर्षपर खड़ी है। एक संघर्ष दूसरे संघर्षको ही जन्म दे सकता है, शान्तिको नहीं। आज गांधीवादपर आधृत भारतीय संस्कृति ही विश्वको शान्तिका सन्देश दे सकती है, जिसे न किसी धर्मसे द्वेष है और न किसी वादसे कोई राग। सभी धर्मोंमें सहिष्णुता और वादोंमें समन्वय स्थापित करना इसका पहला काम है।

यह सच है कि गांधीवादके आधारपर भारत देशको धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया, फिर भी हमारी परराष्ट्रनीति धर्मपर ही आधृत रही है। हम दक्षिण-पूर्व एशियाके देशोंसे बौद्ध-धर्मके आधारपर और पश्चिम एशियाई देशोंसे इसलामके आधारपर सम्बन्ध स्थापित करनेका प्रयत्न करते रहे हैं। हालके भारत-पाक-संघर्षने इस नीतिकी असफलता पुनः उजागर कर दी है। आजका विश्व धर्म नहीं, शक्तिकी भाषा जानता है। एक-राष्ट्रियता और अखण्ड भारतीय संस्कृतिके आधारपर ही आज हम विश्वमें अपनी स्थिति बना सकते हैं, जिसके प्रवक्ता महात्मा गांधी रहे हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघमें १०४ राष्ट्रोंने हमारे विरोधमें मत दिया, इसका कोई महत्त्व नहीं। महाभारत-कालमें भरी सभामें द्रौपदीके साथ जब अभद्र व्यवहार किया जा रहा था, तो पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण उस घटनाके मौनदर्शक बने रहे। द्रौपदीकी फटकारका उनके पास कोई जवाब नहीं था। विश्वकी नैतिकता महात्मा गांधीके समान अभी इतनी उद्बुद्ध नहीं हुई है कि वह बिना किसी स्वार्थके सब जगह अन्यायका प्रतीकार कर सके। १०४ राष्ट्रोंने अमेरिका अथवा पाकिस्तानी पक्षका समर्थन किया, यह भी कोई चिन्ताकी बात नहीं। इस प्रसंगमें संस्कृतका एक श्लोक याद आता है। उसका अभिप्राय है कि खल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और सज्जनकी मित्रता दिनके पूर्वार्ध और उत्तरार्धकी छायाके समान है। दिनके पूर्वार्धमें किसी वस्तुकी छाया पहले बड़ी प्रतिबिम्बित होती है और धीरे-धीरे घटती जाती है। उत्तरार्धकी छाया पहले छोटी होती है, किन्तु वह बढ़ती जाती है। भारतके मित्रोंकी संख्या अभी भले ही कम हो, यह निश्चित है कि धीरे-धीरे वह अवश्य बढ़ती जायगी।

इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता है, हम अपनी परराष्ट्र-नीतिमें त्वरित परिवर्तन करें। धर्मके आधारपर इसका संचालन तुरन्त बन्द कर दें। वर्तमान परिस्थितिमें इसराइलको मान्यता देना इसका पहला काम हो। भारत और इसराइल मिलकर इसलामसे क्रूरताको दूरकर उसका परिष्कार कर सकते हैं। भारतीय जनता और बुद्धिजीवियोंका, विशेषकर हमारे पत्रकार-बन्धुओंका पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि वे अपनी सरकारको इसराइलको मान्यता देनेके लिए बाध्य करें। यह जरूरी नहीं कि चीनको मान्यता देनेमें अमेरिकाने जो गलती की, उसीको हम इसराइलके मामलेमें दोहरायें।

मिस्र और ईरान इसलामके आविर्भावके पूर्वसे महान् देश रहे हैं। उनको पुनः महान् बनानेके लिए अपने पुराने स्वरूपके अवबोधनकी अपेक्षा है। सिन्धुघाटीकी सभ्यता और अवेस्ताके माध्यमसे भी इनके साथ भावात्मक एकता स्थापित होनी चाहिए, केवल इसलामके माध्यमसे नहीं। दक्षिण-पूर्व एशियाके देशोंको भी केवल बुद्धका नहीं; किन्तु शिव, विष्णु, राम-कृष्ण, बुद्ध, महावीर और महात्मा गांधीका धर्मनिरपेक्ष भारत ही नयी प्रेरणा दे सकता है।

अतीतमें पंचशीलके आधारपर तटस्थ राष्ट्रोंका तृतीय गुट बनानेका हमने प्रयत्न किया था। पर अभी देखा कि बंगला-देशके प्रश्नपर वे तथाकथित तटस्थ राष्ट्र तटस्थ भी न रह सकें। निर्बल व्यक्तिकी क्षमाके समान निर्बल राष्ट्रकी तटस्थताका भी कोई मूल्य नहीं। रूससे सुरक्षा-सन्धि कर इस दिशामें हमने नया पग उठाया है। त्याग और तपस्या (कठोर श्रम) से ही देश सबल हो सकता है। किसी समयका सबसे ऊँचे नैतिकताके सिद्धान्तोंका धनी यह देश आज इस मामलेमें भी सबसे गरीब बन गया है। त्याग और तपस्याकी जिनसे सबसे अधिक आशा की जा सकती है, वे आज अर्थलोलुपता, अकर्मण्यता, संकीर्णता, मिथ्या आडम्बर आदिके केन्द्र बने हुए हैं। इन स्थानोंमें बौद्धमठीय संस्कृतिका 'भोगश्च मोक्षश्च'-वाला सिद्धान्त आज भी अपनी जड़ जमाये हुए है। उपनिषद्के त्याग महावीरकी तपस्या, बुद्धकी परदुःखकातरता, सिद्ध-सन्त, साधु और फकीरोंकी विश्वबन्धुत्वकी भावना, गुरुओंके बलिदान और ईसाई मिशनरियोंको सेवाभावनाके सिद्धान्त जब इस राष्ट्रके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनमें पूरी तरह प्रविष्ट होंगे, तभी यह देश पुनः महान् बनेगा। विश्वकी कोई भी शक्ति भारतको शान्तिका सन्देश सुननेसे रोक न सकेगी। तृतीय गुट बनाने अथवा विश्वकी तीसरी शक्तिके रूपमें उभरनेके बजाय भारतका गौरव इसीमें हैं कि वह दुनियाको एक गुट, एक विश्व और एक संस्कृतिकी छत्रच्छायामें इकट्ठा कर भावी युद्धकी विभीषिकासे उसे बचा सके। सांस्कृतिक नव-चेतनाके अरुणोदयकी वेलामें इस पुनीत यज्ञकी पुरोधा भारतकी प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधीका हम अभिनन्दन करते हैं।

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुराना इतिहास नये कलेवरमें

श्री 'शङ्खपाणि'

★

आजसे लगमग पांच हजार वर्ष पूर्व, जब कि द्वापर-युगका सन्ध्याकाल चल रहा था, उत्तर-भारतके पश्चिमी क्षेत्र कुरुक्षेत्रमें कौरव-पाण्डवोंका घोर युद्ध हुआ। महान् भारतके सभी लोग उस युद्धकी लपेटमें आ गये, इसीलिए उसे 'महाभारत युद्ध' नामसे याद किया जाता है। इस दीर्घकालके पश्चात् पुनः गत दिसम्बरमें, जब कि द्वापर और कलिका सन्धिकाल चल रहा है, उसी इतिहासकी पुनरावृत्ति हुई। उत्तर भारतके पश्चिम और पूर्व दोनों भागोंमें भयानक संग्राम हुआ, जिससे समस्त विश्व प्रभावित हो उठा। महाभारत-युद्ध तो अठारह दिनोंतक लड़ा गया, पर इस युद्धमें मात्र चौदह दिनोंमें शत्रुपक्षने हथियार डाल दिये। जैसे पुराना महाभारत भाई-भाइयोंका युद्ध था, वैसे ही यह नवीन महाभारत भी रहा। प्राचीन महाभारत-कालमें युद्धसे पूर्व एक वर्गके लोगोंने दूसरे वर्गकी धन-सम्पत्तिका छलपूर्वक अपहरण कर लिया और उस वर्गकी एक सती-साध्वी नारीको भरी-सभामें अपमानित किया। उस क्रूर वर्गका यह अत्याचार हो उभय पक्षमें संघर्षका मूलकारण बना। कौरवोंका पाण्डवोंके प्रति अन्याय पराकाष्ठाको पहुँच गया था। उन्हें कड़ी शर्तमें बाँधकर तेरह वर्षोंतक वनवासके लिए भेज दिया गया। अन्तिम एक वर्ष अज्ञातवासका काल था। उस कालमें यदि पाण्डवोंके निवासस्थानका पता चल जाय तो उन्हें पुनः तेरह वर्षोंके लिए वनवास स्वीकार करना पड़ेगा—यह बात कही गयी थी। योजना यह भी कि इस अवधिमें शोषकवर्ग पाण्डवोंके राज्यको पूर्णतः आत्मसात् कर शासनकी सुदृढ़ व्यवस्था कर ले तथा गुप्त षड्यन्त्र कर पाण्डवोंको वनमें ही खपा दिया जाय। किन्तु ऊपरसे यही बताया गया कि वनवासकी अवधि पूर्ण कर लेनेपर पाण्डवोंका राज्य उन्हें लौटा दिया जायगा। साधु-प्रकृतिके पाण्डवोंने धैर्य-पूर्वक महान् क्लेश उठाकर वनवासकी अवधि पूरी कर ली। बीचमें कौरवों द्वारा किये गये अनेकानेक षड्यन्त्र भी भगवत्कृपासे पाण्डवोंपर सफल न हो सके। वनवाससे लौटकर पाण्डवोंने जब अपना राज्य वापस माँगा, तो कपटी कौरवोंने सुईकी नोंक बराबर भी भूमि लौटानेसे इनकार कर दिया। अब उनके पास अपने न्यायोचित स्वत्वको पानेके लिए युद्धके सिवा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं रह गया। ऐसे संकटके समय दीन-दुर्बलोंके एकमात्र बन्धु अशरण-शरण भगवान् श्रीकृष्णने उनका पक्ष ग्रहण किया। उन्होंने भी शान्तिके लिए, युद्ध टालनेके लिए अथक प्रयास किया, पर दुराग्रही कौरवोंने उनकी एक न सुनी और वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विनाशकारी युद्ध होकर ही रहा। अन्ततोगत्वा उसमें विजय भारत (भरतवंशी युधिष्ठिर आदि) की ही हुई। सफलता प्राप्त करानेका श्रेय एकमात्र भगवान् श्रीकृष्णको ही मिला।

आधुनिक महाभारत-युद्धका भी कुछ ऐसा ही कारण बन गया था। पश्चिम पाकिस्तानके तानाशाह लोग लगभग पचीस वर्षोंसे बँगला-देश (पूर्वी पाकिस्तान) का शोषण कर रहे थे। जब वहाँके जन-नायकोंने उस शोषणके विरुद्ध आवाज उठायी तो उनपर दमनका चक्र चलाया गया। वर्षोंतक तानाशाही शासनके बाद जब एकबार वहाँ चुनाव कराया गया, तो जनताने अपने प्रिय नेताओंको इस आशासे चुना कि अब जनतन्त्र राज्यकी स्थापना होगी और फौजी शासनके अत्याचारका अन्त हो जायगा। चुनावका परिणाम सामने आनेपर निरंकुश शासकोंको यह डर हो गया कि अब बँगालका मनमाने ढंगसे दोहन न हो सकेगा। अतः जनताके स्वायत्त शासनकी माँग ठुकराकर वहाँ सेना द्वारा दमन आरम्भ कर दिया गया और सब ओर भारी आतंक फैलाया गया।

बंगला-देशके सर्वाधिक लोकप्रिय नेता बंगबन्धु मुजीबुर्रहमानको कैद करके पश्चिम पाकिस्तानकी काल-कोठरीमें बन्द कर दिया गया और उनपर राजद्रोहका मुकदमा चलाया गया। पश्चिम पाकिस्तानकी मुसलिम सेनाने बंगला-देशकी मुसलिम-बहुल जनतापर बर्बर आक्रमण कर दिया। घरमें बैठी निहत्थी जनताके खूनसे बंगदेशकी धरती सींची जाने लगी। हजारों-लाखों माताओं, बहनों और बेटियोंकी उन पिशाचोंने इज्जत लूटी और उनमेंसे अधिकांशको बड़ी बेरहमीके साथ मौतके घाट उतार दिया। कितनोंके अंग-भंग कर उनके चेहरोंको विकृत करके चीखती-चिल्लाती छोड़ दिया। सैकड़ो बुद्धिजीवी बंगाली कत्ल कर दिये गये। सहस्रों अध्यापक, छात्र और वैज्ञानिक गोलीसे उड़ा दिये गये। लाखों लोगोंकी लाशोंसे पूर्वी बंगप्रान्त दुर्गन्धपूर्ण हो उठा। घरके घर और गाँवके गाँव श्मशान बना दिये गये। हिंसा, आगजनी और लूटमारका सर्वत्र बोलवाला हो गया। जनता आतङ्कित हो भाग-भागकर भारतमें शरण लेने लगी। लगभग एक करोड़ शरणार्थियोंका भारी बोझ भारतको उठाना पड़ा। पश्चिम पाकिस्तानके मुसलमान शासक बंगाली मुसलमानोंकी नस्ल मिटा देनेपर तुल गये थे। बंगधराके हाहाकार और आर्तनादसे सारा विश्व व्याप्त हो गया। इस तरहकी दानवीय हिंसा, दमन और बलात्कारका कोई दूसरा उदाहरण किसी देशके इतिहासमें कभी नहीं मिल सकेगा।

बंगला-देशके लोग पाण्डवोंकी अपेक्षा भी अधिक उत्पीडनके शिकार हुए। पाण्डवोंके भ्राता युधिष्ठिरके समान न्यायप्रिय बंगबन्धु मुजीबपर तो पाकिस्तानी शासकोंकी शनि-दृष्टि पड़ ही चुकी थी। वे उन्हें फाँसीपर लटकानेको उतावले हो उठे थे। प्रजातन्त्रके इस युगमें भारी बहुमतसे निर्वाचित जनप्रिय नेताको पाकिस्तानी तानाशाह जेलकी यातनाएँ दे रहे थे और उधर चुन-चुनकर बंगालके नवतरुणोंको गोलीसे उड़ाते जा रहे थे। ऐसे समय बँगला-देशके वीर बलिदानी युवकोंने मुक्तिवाहिनी संगठित की और सुभद्राकुमार अभिमन्यु तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी भाँति शौर्य-वीर्यका परिचय देते हुए शत्रुओंके सैनिक चक्रव्यूहका भेदन आरम्भ कर दिया।

जैसे प्राचीन महाभारत-कालमें जनताकी सहानुभूति सदा न्यायप्रिय पाण्डवोंके पक्षमें ही रही, वैसे ही इस आधुनिक महाभारत-कालमें भी समस्त भारतीय जनता वंग-बन्धु मुजीब तथा उनकी मुक्तिवाहिनीके साथ ही सहानुभूति रखने लगी। सब लोग उनकी विजय चाहने लगे। इस पुण्य अवसरपर भगवान् श्रीकृष्णका पार्ट अदा किया भारतकी प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधीने। उन्होंने खुलकर बंगला-देशका पक्ष लिया और विश्वके कोने-कोनेमें घूमकर सर्वत्र वंग-भूमिकी दुर्दशाका चित्र प्रस्तुत किया। उन्होंने सभी देशोंके लोगोंसे कहा : 'बंगला-देशपर किये जानेवाले पाकिस्तानी तानाशाहोंके बर्बरतापूर्ण अत्याचार रोके जायँ। वहाँके नर-नारियोंकी सामूहिक हत्या बन्द की जाय।' बहुत-से देशोंकी जनताने इस पुकारको सहानुभूतिसे सुना और पाकिस्तानके विरुद्ध आवाज भी उठायी। किन्तु पाकिस्तान जिसके हाथकी कठपुतली है और रहा है, उस अमेरिकाके राष्ट्रपति निक्सन अपने हृदयको पत्थर बनाकर पाकिस्तानी पिशाचोंको शह देते चले गये। युद्धके उन्मादमें दुर्योधन और दुःशासनके भी कान काटनेवाले याहिया खाँने भारतके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी और हवाई-आक्रमण भी पहले ही शुरू कर दिया।

इस संकटकी घड़ीमें हमारी प्रधानमन्त्रीने अनोखी सूझ-बूझका परिचय दिया और स्वयं आगे बढ़कर बँगला-देशको मान्यता दे दी। उन्होंने खुलकर बंगला-देशकी सहायता की और याहिया खाँको मुँहतोड़ उत्तर देनेके लिए पश्चिमी पाकिस्तानको भी चारों ओरसे घेर लिया। जैसे भगवान् रामने लंका-विजयसे पूर्व ही विभीषणका राजतिलक कर दिया था, उसी प्रकार भारतकी प्रधानमन्त्रीने युद्ध जितनेसे पहले ही बँगला-देशको स्वाधीन राज्य घोषित कर दिया। मुक्तिवाहिनीके तरुण सैनिक पाण्डव-वीरोंकी ही भाँति शौर्य और साहसके साथ भारतीय सेनाके कन्धेसे कन्धा मिलाकर लड़े। जहाँ सत्य और न्याय है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ विजय निश्चित है : यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः। पूर्वके युद्धमें बँगला-देश पाकिस्तानके हाथसे निकल गया। उसकी बहुत बड़ी सेनाको विवश होकर आत्मसमर्पण करना पड़ा। पश्चिमके क्षेत्रमें भी पाकिस्तानने बहुत कुछ खो दिया।

अन्तमें भारतके युद्ध-विरामकी घोषणा करनेपर उसे भी विवश होकर वही घोषणा दुहरानी पड़ी। भारत और बंगला-देशकी इस आधुनिक महाभारतमें भी विजय हुई। मुजीब कैदी होकर देशसे अलग हुए थे, किन्तु राष्ट्रपति होकर पुनः स्वदेश लौटे। नयी सरकार बनी और उन्होंने प्रधानमन्त्रीका पद सँभाला। भारत और बंगला-देशमें भी उनका शानदार स्वागत हुआ। मियाँ भुट्टोने शकुनिकी-सी कुटिल चाल चली, किन्तु उसीकी भाँति वे भी सफल न हो सके। जो देश भारतको निर्बल बनाये रखनेमें ही अपना स्वार्थ देखते थे, उन्हें जबर्दस्त धक्का लगा और मुँहकी खानी पड़ी। हमारी प्रधानमन्त्रीकी शरणागत-वत्सलता और कर्तव्यनिष्ठाकी, जो भारतीय परम्पराकी ही देन है, सर्वत्र भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्दिराजी वास्तवमें भारतकी इन्दिरा (लक्ष्मी) हैं। आज उनकी यशोगाथासे विश्वका दिग्दिगन्त गूँज उठा है।

भारतीय सैनिकोंका बर्ताव और व्यवहार भी अपने देशके गौरवके अनुरूप ही रहा। जहाँ पाकिस्तानी अपने पैशाचिक कृत्योंके लिए प्रख्यात थे, वही भारतीय सैनिक सौम्यता और सद्व्यवहारके प्रतीक समझे गये। बंगला-देशका प्रत्येक निवासी उन सैनिकोंका सादर स्वागत करता और उनके द्वारा अपने देशके प्रत्येक नर और नारीकी इज्जत और जीवन सुरक्षित समझता था। सब लोग भारतीय सैनिकोंके साथ हो-होकर उछलते-कूदते हुए 'जय बांगला'के नारे लगाते थे। जनताका पाकिस्तानी सैनिकों तथा रजाकारोंपर बड़ा रोष था। वह उनसे प्रतिशोध लेना चाहती थी, मगर भारतीय सैनिकोंने उनके जीवनकी भी रक्षा की। उनके इस सद्व्यवहारकी शत्रुके सैनिकोंने भी मुक्त कण्ठसे सराहना की है।

जेनेवा-सम्मेलनके समझौतेके अनुसार कैदियोंके साथ अच्छे बर्तावकी बात उठायी जाती है; किन्तु अच्छा बर्ताव और वह भी शत्रुके साथ, भारतीय परम्पराका सहज गुण है। पृथ्वीराजने मुहम्मद गोरीको अनेक बार क्षमादान दिया था। भगवान् श्रीकृष्णने पराजित जरासन्धको सत्रह बार जीवित लौट जानेकी अनुमति दी थी। प्राचीन भारतमें भँगोड़े सैनिकोंको कैद ही नहीं किया जाता था। सैनिक मारे जाते या भाग जाते थे। राजाको ही मारने या जीते जी कैद करनेकी चेष्टा की जाती थी; क्योंकि उसीकी हारपर उस समस्त सेनाकी पराजय निर्भर करती थी। आजकलके युद्धकी प्रणाली सर्वथा भिन्न है। सेनाकी पराजयसे ही पराजय स्वीकार की जाती है। भारतीय सेनाके समक्ष लाखों पाकिस्तानी सैनिकोंने आत्म-समर्पण किया, यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। संसारने भारतीय वीरोंके शौर्यका लोहा मान लिया है। मुजीबका राज्य सत्य और न्यायका राज्य है। वे इस युगके धर्मराज युधिष्ठिर हैं।

●

विचित्र चित्रकार

खोजते जिसे हैं नित व्योममें दिनेश-चन्द्र
भूमि घूम-घूम यत्न करती अपार है।
प्रकृति सजाती वेश जिसके रिझाने हेतु
ऊषा मुसकाती खोल कंचनका द्वार है।
मंजुल समीर जिसे खोज रहा घूम-घूम
पूजा-हेतु उठता पयोनिधि अपार है।
जिसने रचा है यह विश्वका अनोखा चित्र
कहाँ छिपा बैठा वो विचित्र चित्रकार है?

—श्री रामेश्वरदयाल दुबे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल्कि-अवतारकी आवश्यकता

श्री लक्ष्मीशङ्कर व्यास
सम्पादक : 'आज' वाराणसी

प्रधानमन्त्रीजीने पूनामें देशकी उन्नतिके लिए कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन आदि रचनात्मक कार्योंकी निर्बाध प्रगतिकी आवश्यकतापर जोर दिया है। वर्तमान स्तरतक पिछड़ गये देशके लिए रचनात्मक और उन्नतिकारक कार्योंकी आवश्यकता अनिवार्य हो चुकी है और उस पर जितना भी ध्यान दिया जाय, थोड़ा है। किन्तु इसे कार्यरूपमें ले आनेके प्रसङ्गमें कुछ मौलिक प्रश्न उठेंगे, जिनका स्पष्ट समाधान भी करना पड़ेगा। मुख्य प्रश्न यह है कि विकास साम्यवादी प्रणालीसे हो या मुक्त उपक्रम-प्रणालीसे ? भौतिक सुखके साधनोंका लक्ष्य सामने हो या आध्यात्मिकतावादी उन्नतिका ? पद्धति एकदम अहिंसावादी हो अथवा कठोर दण्ड-व्यवस्थाकी ?

ये सब मौलिक प्रश्न हैं। साधारण इतिहास हमें इन प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे पाता, क्योंकि ये सारी प्रणालियाँ कभी व्यावहारिकताकी कसौटीपर कसकर देखी नहीं गयीं। आजमाइश करनेकी न तो सुविधा है और न समय। वर्तमान समयका कर्तव्य निर्धारण करनेके लिए हमें सर्वज्ञानके स्रोत भारतीय धर्मग्रन्थोंकी ही तरफ देखना पड़ेगा।

'धर्मग्रन्थ' शब्दसे बहुतसे लोग चौंकेंगे, किन्तु भारतीय संस्कृतिमें 'धर्म' शब्दका वह अर्थ नहीं, जो ईसाई अथवा इस्लामी संस्कृतिमें है। भारतीय जब धर्मकी बात करते हैं तब उनका आशय ईसाई जिसे 'फेथ' कहते हैं, ('फादर, सन और होली घोस्ट'के सिद्धान्तमें आस्थामें) वह नहीं है और न 'ला इलाह इल्ललाह···रसूल अल्लाह' तर्जके किसी कलमेपर ईमान लानेकी ही जरूरत है। हमारे धर्मग्रन्थ भी इस तरहके नहीं कि जो एकबार लिख दिये गये तो किसी भी परिस्थितिमें अपरिवर्तनीय नहीं। धर्मके अर्थमें देश, काल, पात्रके अनुसार शुभकारी कर्तव्योंका विवेचन समय-समयपर विद्वानों द्वारा किया जाता रहा और वही धर्म-ग्रन्थोंमें संग्रहीत होता रहा है। अनेक दार्शनिक प्रश्नोंके उत्तर भी जैसे जिसकी समझमें आये, दिये जाते रहे। ये सब मिलकर एक समूह या संहिता बन गये।

यह ठीक है कि वेदको देववाणी माना जाता है और अनेक मामलोंमें उसके आदेशोंको अनेक लोग अकाट्य समझते हैं। किन्तु उन्हें भी देश, काल, पात्रके आधारपर विवेचन करके ही पालन करनेका आदेश है। ऐसा कोई दृष्टान्त सामने नहीं कि जिज्ञासुके कर्तव्यके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बारेमें किसी समस्याका समाधान वेदसे न हो सका हो। वेदोंमें ज्ञानका अथाह समुद्र भरा है। पर उससे लाभ उठानेवाले लोग अपने सीमित ज्ञानके अनुसार ही तत्त्व निकाल पाये हैं।

वर्तमान प्रश्न है कि इस समय हमारा क्या कर्तव्य है और ऊपर बतायी हुई दो शासन-प्रणालियोंमें से अथवा राजतन्त्रसे देशकी समस्या हल हो सकेगी? इसका उत्तर भी हमें धर्मग्रन्थोंसे मिल सकेगा। सूक्ष्मरूपसे नहीं, मोटे रूपसे देखें तो प्रायः सभी धर्मोंके ग्रन्थोंमें सृष्टिके विकासकी प्रणालीकी कथा एक ही प्रकारका तत्त्व प्रतिपादित करती है। इसका आधार भारतीय है। भारतीय अवतारोंके क्रमका अध्ययन करनेपर यह विकास-क्रम बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है और संसार इस समय जिस स्तरपर है, वह भी। मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह और वामन अवतार विकासकी अपनी कहानी बड़े स्पष्ट रूपसे कहते हैं। परशुराम भी (पूर्ण मनुष्य, परन्तु विशालकाय) इसी विकास-प्रक्रियामें आते हैं। आधुनिक विज्ञानने भी इन्हीं तत्त्वोंका प्रतिपादन किया है।

अब इसके बाद सामाजिक व्यवस्था आदिके प्रश्न सामने आते हैं। वे भी अवतारोंके क्रम और उनके क्रियाकलापोंसे स्पष्ट हो जाते हैं। परशुरामके बाद मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रका अवतार हुआ। नामसे ही स्पष्ट है, हर चीजमें मर्यादा है। उसके बादका सोलहों कलाओंसे पूर्ण भगवान् कृष्णका अवतार। केवल मर्यादा ही नहीं, कूटनीति भी। कार्य-सिद्धिके लिए छल, बल कल सब कुछका प्रतिपादन! यह चला, पर बहुत अधिक दिनोंतक लोकोपकारी न रह सका। समाजमें भौतिक स्वार्थसिद्धि ही चरम ध्येय बनकर रह गयी और वह भी चाहे जिस उपायसे प्राप्त हो। इसकी प्रतिक्रिया हुई और महसूस किया गया कि आत्मसंयम और मध्यम मार्गके बिना लोक-कल्याण न होगा। इसको प्रतिपादित करनेके लिए भगवान् बुद्धका अवतार हुआ। वह भी अधिक दिन न चल सका। कठोर राजदण्डका भय समाप्त हो जानेसे खुलकर स्वार्थसिद्धिमें लोग अग्रसर हुए।

संसार इस समय अपने निकृष्टतम रूपमें चल रहा है। आततायियोंको राजदण्ड नहींके बराबर है। स्वार्थ सिद्ध करनेवालोंकी बन आयी है। हर स्तर और हर क्षेत्रमें यही चल रहा है, जिसे लोग कहते हैं कि घोर कलियुग आ गया है। घोर कलियुग आनेपर 'कल्कि'-अवतार होनेकी बात कही गयी है। कब होगा, कैसे होगा, क्या करेगा, आदि बातें तो विवादास्पद भी हो सकती हैं। मुख्य तत्त्वके रूपमें जो बात कही जा सकती है, वह यह कि 'कल्कि' खड्गहस्त और अश्वारूढ़ होगा। दुष्टोंको निर्मूल करेगा और एक प्रकारसे प्रलयकी स्थिति होकर विकास-क्रम पुनः चालू होगा। देश, काल, पात्रके अनुसार इसका व्यावहारिक अर्थ लिया जाय तो यह है कि अवांछनीय और दुष्प्रवृत्तिवालोंका उन्मूलन नयी और सुखी दुनियाके निर्माणके लिए अत्यावश्यक है और अब यही कर्तव्य सबके सामने मालूम होता है। नयी प्रगति और विकासके लिए भी यह अनिवार्य रूपसे आवश्यक है।

इसका समय आ गया है या नहीं, इसका निर्णय तो वर्तमान स्थिति ही कर सकती है। हर तरफ, हर क्षेत्रमें तो भ्रष्टाचारका ही बोलबाला है। जनकल्याणके लिए जो कुछ भी किया जाय, सब कुछ भ्रष्टाचारके गर्तमें समा जाता है। किसी भी प्रकारके विकासके लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसे तो निर्मूल करना ही होगा। भारत सरकारने न तो साम्यवाद अपनाया है और न 'फ्री एण्टरप्राइज' (मुक्त उपक्रम)। उसने मध्यम मार्ग अपनानेकी बात कही है। कर्तव्यके रूपमें वही इस समयके लिए उपयुक्त भी है। किन्तु यह मध्यम मार्ग क्या हो सकता है, इसपर हमें बड़े सुलझे ढंगसे विचार करना होगा।

अभीतक हमने जो भी कदम उठाया, वह या तो भावनावश और यदि कठोर सत्य कहें तो भूतपूर्व सत्ताधिकारियोंके व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि-हेतु लोककल्याणका मुलम्मा चढ़ाकर प्रस्तुत की गयी कार्य-प्रणाली ही अपनायी गयी, जो सिद्धान्त रूपमें चाहे जो कुछ हो, पर व्यवहार रूपमें वही रही है। जहाँतक पूँजीगत सत्ताके विस्तारका प्रश्न है, वह पहलेकी अपेक्षा सिमटकर और भी कम हाथोंमें चली गयी है। राजा-महाराजा, बड़े-बड़े जमींदार तो समाप्त हो गये और साधारण उद्योगपति समाप्त होते चले जा रहे हैं। कुछ इने-गिने बड़े उद्योगपति, जो विशालसे विशालतर होते जा रहे हैं, शासन-तन्त्रको भी खरीदकर अपने इशारोंपर नचा रहे हैं। राजाओंकी जगह नेताओंने ले ली है और इनका तथा बड़े उद्योगपतियोंका गठजोड़ भी हो गया है। ये अन्योन्याश्रित हैं अर्थात् पूंजीवादका निकृष्टतम रूप सामने है। सहकारिताकी असलीयत भी सामने है।

दूसरी तरफ (साम्यवादी) श्रमिक-विकास आदिके नामसे अनेक नये नियम, उपनियम चलाये गये जो बहुधा व्यावहारिकतासे परे हैं। उन्होंने श्रमिक-विकास तो नहीं किया, श्रमिक-नेताओंका विकास अवश्य कर दिया। जो व्यक्ति श्रमिकके रूपमें कहीं नौकरी कर रहा है, उसके लिए 'सिक्युरिटी' (सुरक्षा) अवश्य है, किन्तु अच्छा और अधिक काम करनेकी प्रेरणा समाप्त हो गयी है। काम लेनेवालेकी भी यही स्थिति है। वह भी नये-नये कारखाने खोल अच्छे उत्पादनका अव्वल तो श्रमिक कानूनोंकी वजहसे प्रबन्ध कर नहीं पाता और करनेकी इच्छा रखे भी, तो उसमें व्यक्तिगत लाभकी आशा नहीं देखता। यह आशंका रहती है कि कब श्रमिक-आन्दोलनोंमें उसके द्वारा स्थापित कारखाने तोड़-फोड़ दिये या लूट लिये जायेंगे, या कब उसे सरकार ले लेगी। यह सब न भी हो, तो भी उसे इसका तो निश्चय रहता ही है कि सर्वाहारी कर-भारके कारण उसके पास उसकी कमाईका एक अधेला भी न बच पायेगा। चोरीसे, तिकड़मसे वह जो भी खा ले या बचाकर रख ले, वही उसका होगा।

शासन-यन्त्रकी यह हालत कि उसके सोचनेका तरीका यही हो गया है कि कागजपर कौन-सा एतराज लगाया जाय। उसे अपनी कारगुजारी दिखानेके लिए किसी कागजपर कुछ न कुछ एतराज तो लगाने ही पड़ते हैं और फिर वह अर्थकर भी होता है। यदि स्पष्ट कहा जाय तो एक प्रकारसे सारा देश ही जाब्तेकी नहीं, बल्कि बेजाब्तेकी कमाईपर जी रहा है। साम्यवाद और फ्री एण्टरप्राइज (मुक्त उपक्रम-प्रणाली) का मध्यम मार्ग यह नहीं है कि दोनोंकी बुराइयाँ सम्पूर्ण रूपमें ले ली जायें। बल्कि यह हो सकता है कि पूँजी लगानेवाले या उसका प्रबन्ध करनेवाले या बड़े-बड़े कल-कारखानोंकी योजना चलानेवालेको इतना लाभ अवश्य हो कि प्रेरणा मिले। उनपर केवल इसी बातका बन्धन रहे कि वे दूसरोंकी प्रगतिमें बाधक न हो सकें। श्रमिकोंका उत्थान भी अवश्य होना चाहिए और उनको 'रिजनेबुल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिक्युरिटी आफ वर्क' अर्थात् काम पाने और करनेकी उचित सुरक्षा अवश्य रहनी चाहिए। 'सिक्युरिटी आफ वर्क'के मानी 'सिक्युरिटी आफ पे' (वेतनकी निश्चिन्तता) नहीं।

श्रमिककी काम करनेकी शक्ति और काम करनेकी इच्छा ही उसकी सबसे बड़ी सिक्युरिटी (सुरक्षा) है। इस तरहके लोग आज भी कहते हैं। 'मारो गोली नौकरीको, दो हाथ-पैर हैं तो कोई भी काम कर कमा खायेंगे।' यही आत्मविश्वास सबसे बड़ी सुरक्षा है। सरकारी नौकरियों तथा सरकार द्वारा चलाये जानेवाले उद्योगोंमें तो काम करनेकी प्रेरणा एकदम ही नहीं रह गयी है। अच्छा काम करो, बुरा काम करो, न करो, 'सब धान बाईस पसेरी !' बस एक दफा घुस जाओ, महीनेकी तनखाह मिलती रहेगी। कोई तिकड़म लग जाय, अपनी जात-बिरादरीका आदमी अफसर होकर आ जाय तो तरक्कीका डौल भी लग जायगा। इस प्रकारके लक्ष्यको लेकर देशकी कोई भी उन्नति नहीं हो सकती—न तो व्यक्तिगत और न सामूहिक। इन सब बुराइयोंको देशसे दूर करनेके लिए खड्गहस्त कल्कि-अवतारकी ही नितान्त आवश्यकता है।

रे चित्रकार ! रे चित्रकार !

तूने रच डाले हैं अनेक सर-सरिता, गिरिपथ नद-निर्झर,
मुसकाती सोनेकी ऊषा सन्ध्याकी लाल-लाल चूनर,
हिमगिरिके उत्तुङ्ग शृङ्ग सागरके उठते-बुझे ज्वार,
जीवनकी बाजी जीत-जीत फिर यौवनकी हार-हार,
हो गर्वित कितनी बार सखे
रच सुन्दरियोंके मृदु सिंगार !
भवसागरमें बहता कोई विरही रटता है प्यार,
रह-रहकर तड़प-तड़प उठता जब चलती प्राचीसे बयार,
शिशुओंका हँस पड़ना पाकर माताओंके मृदु मधुर क्रोड़,
नयनोंकी सरल चपल चितवन भावोंकी बढ़ती हुई होड़,
भरकर तू अपनी तूलीमें
कुछ लिखता सच, कुछ निराधार !
क्षण-क्षणके परिवर्तित रंगोंमें रंग उठनेवाला अंबर,
एकाकी विजन शान्त नीरव यमुनाका तट मुरलीका स्वर,
कुछ दूर कदंबकी डालीपर है झूल रही झूला राधा,
कुञ्जोंसे निकल गये मोहन राधातक पड़ी नहीं बाधा
नभमें मुसकाते तारोंको
तू रहा एक युगसे निहार !

—श्री सत्यनारायण द्विवेदी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होली और हमारा कर्तव्य

नित्यलीला-प्रविष्ट

श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार

★

करतलसों ताली देत, राम मुख बोली।
बस जली तुरन्त पातक-पुंजोंकी होली॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि होली हिन्दुओंका बहुत पुराना त्यौहार है। किन्तु इसके प्रचलित होनेका प्रधान कारण और काल कौन-सा है, इसका एकमतसे अबतक कोई निर्णय नहीं हो सका। इसके बाबत कई तरहकी बातें सुननेमें आती हैं। सम्भव है, सभीका कुछ-कुछ अंश मिलाकर यह त्यौहार बना हो। पर आजकल जिस रूपमें यह मनाया जाता है, उससे तो धर्म, देश और मनुष्य-जातिको बड़ा ही नुकसान पहुँच रहा है। इस समय क्या होता है और हमें क्या करना चाहिए, यह बतलानेके पहले होली क्या है, इसपर कुछ विचार किया जाता है।

संस्कृतमें 'होलका' अधपके अन्नको कहते हैं। वैद्यकके अनुसार 'होला' स्वल्प वात है और मेद, कफ तथा थकावटको मिटाता है। होलीपर जो अधपके चने गन्ने या लाठीमें बाँधकर जलती होलीकी लपटमें सेंककर खाये जाते हैं, उन्हें 'होला' कहते हैं। कहीं-कहीं अधपके नये जौकी बालें भी इसी प्रकार सेंकी जाती हैं। सम्भव है, वसन्त ऋतुमें शरीरके किसी प्राकृतिक विकारको दूर करनेके लिए होलीके अवसरपर होला चबानेका बात चली हो और उसीके सम्बन्धमें इसका नाम 'होलिका', होलाका या 'होली' पड़ गया हो।

होलीका एक नाम है 'वासन्ती-नवसस्येष्टि'। इसका अर्थ वसन्तमें पैदा होनेवाले नये धानका यज्ञ होता है। यह यज्ञ फाल्गुन शुक्ल १५ को किया जाता है। इसका प्रचार भी शायद इसीलिए हुआ हो कि ऋतु-परिवर्तनके प्राकृतिक विकार यज्ञके धुएँसे नष्ट होकर गाँव-गाँव और नगर-नगर एक साथ ही वायुकी शुद्धि हो जाय। यज्ञसे बहुतसे लाभ होते हैं, पर यज्ञ-धूमसे वायुकी शुद्धि होना तो प्रायः सभीको मान्य है। अथवा नया धान किसी देवताको अर्पण किये बिना नहीं खाना चाहिए, इन शास्त्रोक्त हेतुको प्रत्यक्ष दिखलानेके लिए सारी जातिने एक दिन ऐसा रखा हो, जिस दिन देवताओंके लिए देशभरमें नये धानसे यज्ञ किया जाय। आजकल भी होलीके दिन जिस जगह काठ-कण्डे इकट्ठे करके उसमें आग लगायी जाती है, उस जगहको पहले साफ करते और पूजते हैं और सभी ग्रामवासी उसमें कुछ-न-कुछ होमते हैं। यह शायद उसी 'नवसस्येष्टि'का बिगड़ा रूप हो। सामुदायिक यज्ञ होनेसे अब भी सभी लोग उसके लिए पहलेसे होमनेकी सामग्री घर-घर बनाने और आसानीसे वहाँतक ले जानेके लिए उसकी मालाएँ गूँथकर रखते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसके अतिरिक्त इस त्यौहारके साथ ऐतिहासिक, पारमार्थिक और राष्ट्रिय तत्त्वोंका भी सम्बन्ध मालूम होता है। कहा जाता है कि भक्तराज प्रह्लादकी अग्निपरीक्षा इसी दिन हुई थी। प्रह्लादके पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपुने अपनी बहन 'होलका'से (जिसे भगवद्भक्तके न सतानेतक अग्निमें न जलनेका वरदान मिला था) प्रह्लादको जला देनेके लिए कहा। होलका राक्षसी उसे गोदमें लेकर बैठ गयी। चारों तरफ आग लगा दी गयी। प्रह्लाद भगवान्के अनन्य भक्त थे, वे भगवान्का नाम रटने लगे। भगवत्कृपासे प्रह्लादके लिए अग्नि शीतल हो गयी और वरदानकी शर्तके अनुसार 'होलका' उसमें जल मरी। भक्तराज प्रह्लाद इस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हुए और आकर पितासे कहने लगे।

राम नामके जापक जन हैं तीनों लोकोंमें निर्भय।
मिटते सारे ताप नामकी औषधसे, पक्का निश्चय॥
नहीं मानते हो तो मेरे तनकी ओर निहारो तात।
पानी-पानी हुई आग है जला नहीं किंचित् भी गात॥

इन्हीं भक्तराज और इनकी विशुद्ध भक्तिका स्मारक-रूप यह होलीका त्यौहार है। आज भी 'होलिका-दहन'के समय प्रायः सब मिलकर एक स्वरमें 'भक्तवर प्रह्लादकी जय' बोलते हैं। हिरण्यकशिपुके राजत्वकालमें अत्याचारिणी होलकाका दहन हुआ और भक्ति तथा भगवन्नामके प्रतापसे भक्त प्रह्लादकी रक्षा हुई और उन्हें भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन हुए।

इसके सिवा इस दिन सभी वर्णोंके लोग भेद छोड़कर परस्पर मिलते-जुलते हैं। शायद किसी जमानेमें इसी विचारसे यह त्यौहार बना हो कि सालभरके विधि-निषेधमय जीवनको अलग-अलग अपने कामोंमें बिताकर इस एक दिन सब भाई परस्पर गले लगकर प्रेम बढ़ायें। कभी भूल या किसी कारण किसीका मनोमालिन्य हो गया हो, तो उसे इस आनन्दके त्यौहारपर सब एक साथ मिल-जुलकर मिटा दें। असलमें एक ऐसा राष्ट्रिय उत्सव होना भी चाहिए जिसमें सभी लोग छोटे-बड़े और राजा-रंकका भेद भूल बिना किसी भी रुकावटके शामिल होकर परस्पर प्रेमालाप कर सकें। यही होलीका ऐतिहासिक, पारमार्थिक और राष्ट्रिय तत्त्व है।

जो कुछ भी हो, इन सारी बातोंपर विचार करनेसे यही अनुमान होता है कि यह त्यौहार असलमें मनुष्य-जातिकी भलाईके लिए ही चलाया गया था। किन्तु आजकल इसका रूप बहुत ही बिगड़ गया है। इस समय अधिकांश लोग इसे जिस रूपमें मनाते हैं उससे तो सिवा पाप बढ़ने और अधोगति होनेके और कोई अच्छा फल नहीं। आजकल क्या होता है?

कई दिन पहलेसे स्त्रियाँ गन्दे गीत गाने लगती हैं, पुरुष बेशरम होकर गन्दे अश्लील कबीर, धमाल, रसिया और फाग गाते हैं। स्त्रियोंको देखकर बुरे-बुरे इशारे और आवाजें लगाते हैं। डफ बजाकर बुरी तरहसे नाचते और बड़ी गन्दी-गन्दी चेष्टाएं करते हैं। भाँग, गाँजा, सुल्फा और माँजू आदि पीते तथा खाते हैं। कहीं-कहीं शराब और वेश्याओं तककी धूम मचती है। भाभी, चाची, साली, सालेकी स्त्री, मित्रकी स्त्री, पड़ोसिन और पत्नी आदिके साथ निर्लज्जतासे फाग खेलते और गन्दे-गन्दे शब्दोंकी बौछार करते हैं। राख, मिट्टी और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कीचड़ उछाले जाते हैं। मुँहपर स्याही, कारिख या नीला रंग पोत दिया जाता है। टोपियाँ और पगड़ियाँ उछाल दी जाती हैं, कहीं-कहींपर जूतोंके हार बनाकर पहने और पहनाये जाते है। लोगोंके घरोंपर जाकर गन्दी आवाजें लगायी जाती हैं। फल क्या होता है? गन्दी और अश्लील बोल-चाल और गन्दे व्यवहारसे ब्रह्मचर्यका नाश होकर स्त्री-पुरुष व्यभिचारके दोषके दोषी बनते हैं। शास्त्रमें कहा है :

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥

(१) किसी भी स्त्रीको किसी भी अवस्थामें याद करना, (२) उसके रूप-गुणोंका वर्णन करना, स्त्रीसम्बन्धी चर्चा करना या गीत गाना, (३) स्त्रियोंके साथ ताश, चौपड़, फाग आदि खेलना, (४) स्त्रियोंको देखना, (५) स्त्रीसे एकान्तमें बातें करना, (६) स्त्रीको पानेके लिए मनमें संकल्प करना, (७) पानेके लिए प्रयत्न करना, और (८) सहवास करना—ये आठ प्रकारके मैथुन विद्वानोंने बतलाये हैं। कल्याण चाहनेवाले इन आठोंसे बचें।

इसके सिवा ऐसे आचरणोंसे निर्लज्जता बढ़ती है, क्रोध बढ़ता है, परस्पर लोग लड़ पड़ते हैं, असभ्यता और पाशविकता भी बढ़ती है। अतएव सभी स्त्री-पुरुषोंको चाहिए कि वे इन गन्दे कामोंको बिल्कुल ही न करें। इनसे लौकिक और पारमार्थिक दोनों तरहसे नुकसान होते हैं। फिर क्या करें? फाल्गुन सुदी ११ से चैत वदी १ तक नीचे लिखे काम करने चाहिए :

१. फाल्गुन सुदी ११ को या और किसी दिन भगवान्‌की सवारी निकालनी चाहिए जिसमें सुन्दर-सुन्दर भजन और नामकीर्तन हों।

२. सत्संगका खूब प्रचार किया जाय। स्थान-स्थानपर इसका आयोजन हो। सत्संगमें ब्रह्मचर्य, अक्रोध, क्षमा, प्रमादका त्याग, नाममाहात्म्य और भक्तिकी विशेष चर्चा हो।

३. भक्ति और भक्तकी महिमा तथा सदाचारके गीत गाये जायँ।

४. फाल्गुन सुदी १५ को हवन किया जाय।

५. श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण आदिसे प्रह्लादकी कथा सुनी और सुनायी जाय।

६. साधकगण एकान्तमें भजन-ध्यान करें।

७. श्रीचैतन्यदेवकी जन्मतिथिका उत्सव मनाया जाय। महाप्रभुका जन्म होलीके दिन ही हुआ था। इसी उपलक्ष्यमें मुहल्ले-मुहल्ले घूम-घूमकर नाम-कीर्तन किया जाय। घर-घर हरिनाम सुनाया जाय।

८. धुरेण्डीके दिन ताल, मृदंग और झाँझ आदिके साथ बड़े जोरसे नगर-कीर्तन निकाला जाय, जिसमें सब जाति और सभी वर्णोंके लोग बड़े प्रेमसे शामिल हों।

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दर्शनोंकी कन्दराओंमें

अनोखे चित्रकारकी अनोखी कलाकृति

केशव-किङ्कर

★

केशव कहि न जाइ का कहिये !
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये ॥
सून्य भीतिपर चित्र रंग नहिं, तनु-बिनु लिखा चितैरे ।
धोये मिटे न, मिटे भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे ॥
रविकर-नीर बसे अति दारुन मकर-रूप तेहि माँहि ।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरे तीनि भ्रम, सो आपन पहचानै ॥

गोस्वामीजी तुलसीदासजीका यह पद रहस्यवादी समझा जाता है और उसके अर्थ भी लोगोंने विचित्र-विचित्र किये हैं । उसकी ठीक व्याख्या जाननेके लिए पढ़िये :

शब्दार्थ : केसव = केशव, ('को = ब्रह्मा, ईशो = रुद्रः, तौ वातः प्रलये उपाधिरूपं परित्यज्य तिष्ठतो यत्र' केश + वा + ड) अर्थात् प्रलयकालमें क्षीरसमुद्रमें शयन करनेवाले विष्णु ही 'केशव' कहलाते हैं । पर्यायतः विष्णुके समस्त अवतार भी केशव कहलाते हैं । प्रलयकी अवस्थामें भगवान् अपना उपाधिरूप छोड़ सूक्ष्म और निरुपाधि हो जाते हैं । अतः यहाँ इस सृष्टिको तनु-बिनु बताया है । इसीलिए केशव सम्बोधन किया गया है, जो अव्यक्त निरुपाधि है । विचित्र = रंग-बिरंगी, अनेक प्रकारके नाम-रूपोंवाली । सून्य = शून्य, आकाश । भीति = भित्ति, फलक अर्थात् वह काठ, कपड़ा या अन्य किसी ठोस पदार्थका बना पट्टा या दीवार जिसपर चित्र अंकित किया जाता है । चितैरे = चित्रकारने । रविकर-नीर = मृगतृष्णाका जल । प्रायः मरुभूमिमें जब सूर्यकी किरणें रेतपर पड़ती हैं तो उसमें ऐसी चमक प्रतीत होती है, मानो वहाँ जल ही हो । उसे भूलसे जल समझकर मृग उसकी ओर बढ़ते हैं, किन्तु वह जलका भ्रम भी आगे बढ़ता चला जाता है और मृग छटपटाकर प्राण दे देते हैं । मकर = मगर या ग्राह । बदनहीन = बिना मुखके ही । चराचर = चर और अचर, जड़ और चेतन । पान करन = पीनेके लिए । जुगल प्रबल = संसारको सत्य और झूठ दोनों मानना । तीनि भ्रम = १. संसारको सत्य समझना, २. झूठ समझना तथा ३. सच और झूठ दोनों समझना, ये तीनों मत भ्रमपूर्ण हैं । शंकराचार्यने 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' कहकर ब्रह्मको सत्य और संसारको झूठ माना है । विशिष्टाद्वैतवादी रामानुजाचार्यने इसे सत्य और असत्य दोनों माना है, जब कि द्वैतवादी मध्वाचार्य संसारको सत्य ही मानते हैं । आपन = आत्मा अर्थात् वास्तविकता ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भावार्थ : हे अव्यक्त विष्णुरूप ब्रह्म ! हम क्या कहें ? आपकी सर्वथा रंग-विरंगी सृष्टिकी रचना देख कुछ कहा ही नहीं जाता। मन ही मन समझकर मूक रह जाना पड़ता है। ऐसी रचना न तो कहीं देखी और न सुनी, इसीलिए समझमें ही नहीं आता कि यह कैसी बनी ? यह अनोखे नाम और रूपोंसे भरा, रंग-विरंगा संसाररूपी चित्र आपने विना किसी आधार-फलक या सहारे सूनी ही भीत अर्थात् आकाशपर बना दिया है। अनेक प्रकारकी फूल-पत्तियों, जीवों और तितलियोंके पंखोंमें जो तरह-तरहके लाल-पीले, हरे-नीले, बैंगनी-गुलाबी, आसमानी-उन्नाबी, भूरे-काले रंग दिखायी पड़ते हैं, वे कहाँसे आये ? इसका कोई आधार समझमें नहीं आता। आपने विना रंगके ही यह रंग-बिरंगा संसार बना दिया। फिर, इस संसारको बनानेवाले भी आप बिना शरीरके, अव्यक्त हैं। आपने बिना शरीर और बिना रूपके ही यह संसार बना दिया ! संसारमें जो चित्र बनते हैं उनका बनानेवाला कोई शरीरधारी होता है। किन्तु इस संसाररूपी चित्रको बनानेवाले आप तो त्रिगुणातीत, नाम-रूपसे परे, अलख-निरंजन ब्रह्म हैं। संसारके अन्य चित्रोंपर पानी डाल दिया जाय तो मिट जायें और जिस फलकपर (लकड़ी, कागज कपड़े या भीतपर) वे बने हों, वे भी नष्ट हो सकते हैं। किन्तु आपकी यह रंग-विरंगी सृष्टिका चित्र तो ऐसा निराला है कि धोनेसे नहीं मिटता। संसारमें जो चित्र बनते हैं उन्हें देखनेसे सुख मिलता है, किन्तु आपके इस चित्रकी ओर देखनेसे सुखके बदले दुःख ही मिलता है। संसारमें सभी दुखी ही दुखी दिखायी पड़ते हैं। और भी एक विचित्र बात है। यह आपकी सारी सृष्टि झूठी है, मृग-मरीचिका है जिसके जलमें अत्यन्त भयंकर रूपका मकर है। आपकी इस सृष्टिमें इतने प्रकारके आकर्षक रूप हैं कि जो उसकी ओर दौड़े, समाप्त ही हो जाय। इस संसाररूपी मृग-मरीचिकामें रूपका यह मगर भी ऐसा विचित्र है कि मुख-विहीन होते हुए भी वहाँ जल पीने जानेवालोंको एकदम निगल जाता है। जो लोग संसारके विभिन्न रूपोंकी ओर आकृष्ट होते हैं, वे उसीकी भूल-भुलैयामें पड़कर अपने आपको (आत्माको) खो बैठते हैं।

तुलसीदासजीके कहनेका अभिप्राय यह है कि जब कोई साधारण चित्रकार चित्र बनाता है तो वह शरीरवान् होता है। रंग लेकर किसी प्रत्यक्ष काष्ठ-फलक, भित्ति, वस्त्र अथवा कागजपर चित्र बनाता है। चित्र बनानेके लिए रंग एकत्र करता है, अनेक प्रकारसे रंग मिलाता है। कोई चाहे तो पानी डालकर या खुरचकर उस चित्रको मिटा भी सकता है या जिस आधारफलकपर वह अंकित है, उसे नष्ट कर सकता है। चित्रकार जो चित्र बनाता है वह इसीलिए कि उसे देखकर लोग प्रसन्न हों। किसी भयानक दृश्यका भी चित्र बनाता है तब भी देखनेवाले कहते हैं : 'वाह ! क्या जानदार चित्र बनाया है !' उसे देखकर सबको आनन्द तो मिलता ही है, साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि यह चित्र हमारे पास रहे, हम इसे निरंतर देखते रहें। उस चित्रको देखनेसे उन्हें सात्त्विक आनन्द मिलता है। किन्तु भगवान्‌ने जो यह संसाररूपी चित्र बनाया है, वह सभी बातोंमें उपर्युक्त चित्रसे भिन्न है, क्योंकि इसे बनानेवाला ब्रह्म शरीररहित है। यह संसार चित्र आधाररहित शून्यमें बना है। इसमें कोई रंग नहीं लगाये गये। न तो धोनेसे यह मिट सकता है और न इसका आधार ही नष्ट हो सकता है। इसकी ओर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखनेसे दुःख ही प्राप्त होता है, सुख नहीं। सबसे भयंकर बात तो यह है कि जो इसकी सुन्दरता-पर आकृष्ट होकर इसमें रमता है, उसे यह खा जाता है—समाप्त कर देता है।

आपके इस संसार-रूपी चित्रकी विचित्रताके कारण ही बड़े-बड़े आचार्योंको इसके स्वरूपके सम्बन्धमें इतना विचार करना पड़ा कि किसीने इसे 'सत्य' कहा। किसीने कहा : 'यह झूठ है' तो किसीने कहा : 'सत्य भी है और झूठ भी है।'

तुलसीदासजीका मत है कि मनुष्य अपनेको तभी पहचान-सकता है जब वह संसारको न सत्य समझे, न झूठ और न यही समझे कि यह सत्य भी है और झूठ भी। उनका यह संकेत है कि यह संसार सदसद्-विलक्षण है अर्थात् यह सत्य और झूठ दोनोंसे निराला है। अपने इस मतका आभास उन्होंने रामचरित-मानसके प्रारम्भमें ही दे दिया है।

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि - देवासुराः
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

अर्थात् जिनकी मायाके वश सारा विश्व, ब्रह्मा आदि देवता और असुर पड़े हैं; जिनकी सत्तासे ही यह सारा दृश्य-जगत् उसी प्रकार सत्य प्रतीत होता है जिस प्रकार रस्सीको देखकर सर्पका भ्रम होता है; जिनके केवल चरण ही भवसागरसे तरनेकी इच्छा करनेवालोंके लिए एकमात्र नाव है; सब प्रकारके कारणोंसे परे सब कारणोंके कारण रामनामधारी भगवान् हरिकी मैं वन्दना करता हूँ।

इस श्लोकमें गोस्वामीजीने बताया कि यह संसार वास्तवमें वह नहीं जो हमें दिखायी पड़ता है। जैसे रस्सीको देखकर साँपका भ्रम हो जाता है और हम उसे सत्य मानकर साँपकी तरह डरते हैं, वैसे ही संसारका ठीक स्वरूप न समझनेके कारण हम इसे देखकर दुःख पाते हैं। यह दुःख भ्रमके कारण है और वह भ्रम तभी दूर हो सकता है जब हम समझ लें कि यह संसार 'है' और 'नहीं' से विलक्षण (सत्-असत्-विलक्षण) है। जिन्हें यह मान हो जाय वही अपनेको ठीक पहचान सकता है, आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है; क्योंकि जबतक बुद्धिमें भ्रान्ति रहेगी, तबतक आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता। यह आत्मज्ञान भगवत्-कृपाके बिना सम्भव नहीं। यह बुद्धिका भ्रम केवल भगवद्भक्तिसे दूर हो सकता है; क्योंकि वही इस मायामय जगत्में आत्मसाक्षात्कार करा सकती है।

गोस्वामीजीने संसारको निराधार चित्रके रूपमें जो वर्णित किया है, वही भाव एक संस्कृत-कविने निम्नांकित श्लोकमें व्यक्त किया है।

निरुपादानसंभारमभित्तावेव तन्वते।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने॥

अर्थात् निर्माणकी किसी सामग्री और भीत-रूपी किसी आधारफलकके बिना संसार-रूपी चित्र खींचनेवाले अद्भुत कलाकार त्रिशूलधारी भगवान् त्रिशूली (शंकर) को हमारा प्रणाम है।

वाह रे अनोखे कलाकार और उसकी अनोखी कलाकृति! इसलिए सचमुच कुछ कहा नहीं जाता। 'केसव! कहि न जाइ का कहिये ?'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी-कवियोंकी सदाशिवपर उड़ानें

श्री केदारनाथ प्रभाकर

★

संस्कृत-साहित्यकी भाँति हिन्दी-साहित्यमें शिवसम्बन्धी वर्णन नहीं मिलता। सभी रसोंमें थोड़ी-बहुत शिव-विषयक रचनाएँ अवश्य हैं; फिर भी हास्य, वीर, भयानक एवं रौद्ररस प्रधान रूपसे हिन्दी-कवियोंके शिव-वर्णनके माध्यम बने हैं।

हिन्दी-साहित्यमें शिव प्रायः इस प्रकार चित्रित किये गये हैं। सिरपर जटाजूट है, अङ्गोंमें सर्प लिपटे हैं, मस्तकपर गङ्गाजी और ललाटपर चन्द्रमा। दिगम्बर वेश है, कभी-कभी मृगछाला भी पहने रहते हैं। बायें हाथमें डमरू और दाहिनेमें त्रिशूल रखते हैं। सर्वाङ्गमें भस्म रमाये, नीलकंठ, कैलाशवासी, काशीवासी अथवा श्मशानवासी हैं। भूत, प्रेत, पिशाच आदि गण इनके साथ हैं। वामांगमें पार्वती और दाहिने भागमें गणेश एवं कार्तिकेयको साथ लिये हैं। सामने हाथ जोड़े नन्दी खड़े हैं। हिन्दी-रचनाओंमें शिवका स्वभाव प्रायः पलमें प्रसन्न और पलमें अत्यन्त क्रुद्ध होनेवाला दिखाया गया है। इसीके साथ उन्हें औढरदानी, पूर्णयोगी देवाधिदेव तथा 'भोलेबाबा' भी कहा गया है।

शिव-विषयक रचनाएँ हिन्दी-साहित्यमें सर्वाधिक हास्य-रसमें मिलती हैं। यदि कहें कि हिन्दीमें हास्य-रसकी उत्पत्ति शिवजीने की, तो कोई अत्युक्ति न होगी। शायद ही कोई ऐसा हास्य-कवि होगा, जिसने शिव-विषयक दो-चार कवित्त न लिखे हों या शिवजीसे ठिठोली न की हो। देखिये, महाकवि पद्माकर भोलेबाबाके परिछनका कैसा सुन्दर चित्र खींचते हैं।

हँसि-हँसि भजैं देखि दूलह दिगम्बर को, पाहुनी जे आवैं हिमाचलके उछाहमें।
कहै 'पदमाकर'सु काहू सों कहैं को कहा, जोइ जहाँ देखै हँसै सोई तहाँ राहमें॥
मगन भयेई हँसै नगन महेश ठाढ़े, औरेऊ हँसेई हँसै हँसीके उमाहमें।
सीसपर गंगा हँसै भुजनि भुजंगा हँसै, हाँसको दंगा भयो नंगाके बियाहमें॥

उस समय शंकरजीको हार पहनानेके लिए मालिन आयीं।

शंकरके ब्याहमें उछाह भौ अनेक भाँति,
मालिन लै आयी गूँथ फूलनके हरवा।
'शारद रसेन्द्र' दर्श पायो भयो मन हर्ष,
दिहिसि पिन्हाय तुर्त शंकरके गरवा।
हँसि हँसि नैन मटकाय रहे घूँघटते।
माँगति इनाम मोतीहार सतलरवा।
डारि हाथ गरवा उठायो ब्याल करवा तौं,
भरत मोहरवा सो भागि चली घरवा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कैसा सुन्दर पुरस्कार रहा ! महाकवि पद्माकर तो भोलेबाबाके औढरदानीपनपर रीझ गये। बात भी ठीक है, एक धतूरेके फूलके बदले उनसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ जो हाथ लग जाते हैं।

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत पै, पावत न पार जा अनन्त गुन पूरेको।
कहै 'पद्माकर' सु गालके बजावत ही, काज करि देत जन जाचक जरूरेको।।
चन्दकी छटानजुत पन्नग फटानजुत, मुकुट बिराजै जटाजूटनके जूरेको।
देखो त्रिपुरारीकी उदारता अपार जहाँ, पैये फल चार फूल चार दै धतूरेको।।

सेनापतिजी भोलेबाबाको बेलपत्रसे ही प्रसन्न होता देखते हैं।

सोहत उतंग जाको उत्तमंग संग गंग गौरि अरधंग रंग काम प्रतिकूल है।
देवनको मूल 'सेनापति' अनूकूल करि, चाम सारदूलको सदा कर त्रिशूल है।।
कहाँ भटकत अटकत क्यों न तामें मन, जाते आठ सिद्धि नव निद्धि रिद्धि तूल है।
लेत ही चढ़ाइबे को जाके एक बेल पात, चढ़त अगऊ हाथ चारि फल फूल है।।

महाकवि केशवदासजीने भी शिव-परिवारमें महान् समता देखकर उसका कितना सुन्दर वर्णन किया है।

'केसोदास' मृगज बछेरू चौखे बाघिनीन, चाटत सुरभि बाघ-बालक बदन है।
सिंहनकी सटा ऐंचै कलभ करनि करि, सिंहनको आसन गयंदको रदन है।।
फनीके फननपर नाचत मुदित मोर, क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे-डोर अन्ध तापसनि, सिवको समाज कैधौं ऋषिको सदन है।।

इनके स्वरूपका ध्यान करते हो रसखानिके सारे दुःखद्वन्द्व मिट जाते हैं।

यह देखु धतूरेको पात चबात औ गातमें धूर रमावत है।
चहुँ ओर जटा अटकैं लटकैं, फनसे संपनी फहरावत है।।
गज खाल कपालकी माल बिसाल सो गाल बजावत आवत है।
'रसखानि' जोई चितवै चित दै, तिहिको दुखद्वन्द्व भजावत है।।

महाकवि तुलसीदासने भोलेबाबाके दानीपनका व्याज-स्तुतिमें कैसा सुन्दर चित्रण किया है ! ब्रह्माजी उमासे कहते हैं।

बावरो रावरी नाह भवानी !
दानि बड़ों दिन देत दये बिनु वेद बड़ाई मानो।।
निज घरकी बर बात बिलोकहु तो तुम परम सयानी।
शिवकी दई सम्पदा देखत श्रीशारदा सिहानी।।
जिनके भाल लिखी लिपि सुखकी नैसुक नहीं निसानी।
तिन रंकनको नाक संवारत ही आयो नकवानी।।
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सोपियो औरहि भीख भली मैं जानी।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम प्रशंसा बिनय ब्यंगजुत सुनि बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेश मनहि मन जगतमातु मुसुकानी॥

गोस्वामीजी तो शंकरबाबाको छोड़कर दूसरी जगह माँगनेके लिए जाना ही नहीं चाहते।

१ : को जाँचिये सम्भु तजि आन।
२ : दानी कहुँ संकर सम नाही।
३ : जाँचिये गिरिजापति कासी,
जासु भवन अनिमादिक दासी।
४ : देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे।
किये दुःख दूरि सबनके जिन-जिन कर जोरे॥

अब गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा वर्णित भगवान् शिवके भयानक रसका उदाहरण भी देख लीजिये।

तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकारा।
संग भूत प्रेत पिसाच जोगिन निकर मुख रजनीचरा।
जो जियत फिरहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही।
देखहिं सो उमा बिवाह घर-घर बात अस लरिकन कही॥

शिवजीका रौद्ररूप तो अतिप्रसिद्ध है। इसका वर्णन युद्धोंमें जब योगिनी, प्रेत, पिशाच आदिको संग लिये शंकर प्रलयका रूप धारण कर लेते हैं, तब आता है। शिवजीका तीसरा नेत्र उनकी अति रौद्रताको सिद्ध करनेमें बड़ा सहायक होता है। देखिये तुलसीदासजीके शब्दोंमें।

सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रयलोका।
तब शिव तीसरा नैन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा॥
हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुरभे असुर दुखारी॥

शिव-शिवा-विनोदकी बहार श्री नाथूराम 'शंकर'के शब्दोंमें देख लीजिये। पार्वतीजी कहती हैं।

इन भूत परेत पिशाचनके डरसे, निशि-बासर ही डरती।
दधि दूध न अन्नहू ढूँढे मिले, नित भाँग भकोसत ही मरती।
नहि अम्बर अंग दिगम्बरके, तन माँहि भभूत मल्यों करती।
हँसि पारबती कहैं 'शंकर'सों हम ना बरती तुम्हें को बरती।

शंकर महाराज कब चुप रहनेवाले थे? झट बोल उठे।

तजि रम्य मनोरम दर्शनको, इन आय पहारनमें मरतो।
ससुरारि सबै जड़ जोग न एक, बृथा अपमानमें को अरतो॥
चढ़ि सिंह लिये कर आयुध, आचरती तुम को तब आचरतो।
हँसि 'शंकर' शैलसुता सो कहे, हम न बरते तुम्हें को बरतो॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कवि 'वचनेश' शंकरके ठनठन-गोपाल होनेका हाल कितनी सुन्दरतासे वर्णन करते है।

मांगै कहा अम्बर तै आप ही दिगम्बर है,
मांगै कहा भूषण कपाल - व्यालधारी तै।
मांगे कहा वाहन तिहारे एक डंडी वैल,
मांगे कहा पाक विष आकको अहारी ते॥
मांगे कहा धाम है मसानको प्रवासी देव,
मांगे कहा तो सो धन बिदित भिखारी ते।
'वचनेश' नाथ हाथ जोरि यही मांगे हम,
हर है तो हर हर! विपत्ति हमारो तैं॥

शंकरजी बड़े कठोर शासक हैं। क्या मजाल कि कोई चूंतक कर सके। कविवर 'वन्धु' इसी शासनका नमूना प्रस्तुत करते हैं—

सिंह न बैल सों बोले कछू न, भुजंगम मूषक ओर निहारे।
मोर रहे बनि मित्र भुजंगको, प्रेत पिशाच हैं दीनता धारे॥
देख्यो दिगम्बरके घरमें हरि, हेकड हूँ मिले दाँत निकारे।
और की 'वन्धु' है का गति, भंगड़ नंगासे भगवान हूँ हारे॥

उमा-कमला-संवादमें कमला मजाक करती उमासे उनके पतिके विषयमें पूछती है और उमा भी उसी तरह उन्हें मजाकभरा उत्तर देती हैं।

भिक्षुक तिहारो कहाँ? बलि-मखशाला जहाँ,
सर्पनको संगी? कहूँ ह्वै है क्षीरसागरमें।
ए री बहुरंगी! बैलवालो कहाँ नाचत है?
कीन्हे तिरभंगी कहूं ह्वै है ग्वालन-बालनमें॥
चांवर चबैया कहाँ? ह्वै है सो सुदामा-पास,
विषको अहारी कहाँ? पूतनाके उरमें।
सिन्धुसुता आन कीनी तर्क सो बितर्क करि,
गिरिजा मुसुकात जात झारी लिये करमें॥

सदियों पुराने शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायोंके परस्पर विवादको भी एक हिन्दीके कवि नन्दलाल माधुर ने भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णुको एक ही रूपमें दिखाकर सुन्दर ढंगसे शान्त कर दिया है।

उनते कढ़ी है गंग, इनते वढ़ी है गंग,
वे है जो मुरारी तो पुरारी ए कहावे है।
उनके रमा है संग, इनके उमा है संग,
उतै सांप सेज, इतै सांप लपटावे हैं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्द गोद राजे वह, नंदि पीठ राजे यह,
सीस चन्द छावे, चन्द शीश पै चढ़ावे हैं।
पापके हरैया हरि, तापके हरैया हर,
एक है, कहावै दोय, भक्तन को भावे है॥

भगवान् शिवके परिवारका विस्तृत वर्णन श्री 'अनन्त' के शब्दोंमें पढ़ते ही भगवान् शिवके समस्त विशेषण जैसे भोलेबाबा, प्रेतसंगी, श्मशानवासी, सर्पधारी तथा कपालमुण्डधारी आदि साकार हो जाते हैं।

सैन चतुरंगिणी कहा है भूत-प्रेतन को,
संग बहुरंग आगे, बजत मृदंग है।
भंग चढ़ा कोऊ, नंग कोऊ, पंग कोऊ और
लंग कोऊ करत अजीब रंग-ढंग है॥
नाचत बजावत औ गावत उमंग संग,
देखि देखि दंग होत रंग बदरंग है।
भंगकी तरंगमें अनंगअरि बैठ्यो नंग,
संगमें भवानी अंग-अंगमें भुजंग है॥

भगवान् शिवकी स्तुति कर कविवर अर्जुनदास-केडियाने हिन्दी-साहित्यमें मानो ताण्डव-स्तोत्रका ही सर्जन कर दिया।

मख-हन, मरदन मयन, अयन त्रय,
बट तर अयन रजत परबत पर।
चरम बसन, तन भसम प्रसम मन,
ससधर धरन, गरल गर गरधर॥
हरन व्यसन जन, करन अमल मन,
मन मन, असरन सरन अमर बर।
चढ़त बरद, बर बरद प्रनत, रत,
हरत जगत भय, जय जय जय हर॥

अन्तमें कल्याणकारी शिवका वर्णन कविवर प्रेमनाथ त्रिपाठीके प्रेमभरे शब्दोंमें पढ़िये।

कासी के बसैया परकास के दिवैया नाथ,
भंग के छनैया अरु गंग के धरैया तुम।
बेस के अमंगल औ जंगलके बासी प्रभु,
तोहू महामंगल, हो मंगल करैया तुम॥
केतिक उधारे केते तारे भवसागर ते,
केतिक सम्हारे ऐसे बिपद-हरैया तुम।
एहो त्रिपुरारी अघहारी सुखकारी शिव
'प्रेम' पर्‌यो द्वारे आज लाजके रखैया तुम॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तेजनारहित स्थिति एवं अन्तर्मुखता

मुक्ति क्या और कहाँ ?

श्री गोविन्द शास्त्री

★

जाने क्यों मन्दिरमें जाकर मैं दुःखी होता हूँ। बड़े भव्य मन्दिरमें भगवान्‌का विग्रह सम्पदा-वैभवसे घिरा-घिरा मुझे रुचिकर नहीं लगता। इन मन्दिरोंको भौतिक ऐश्वर्य निगल गया है। किसी भी सम्पन्नने केवल शौकके लिए या अपनी कामनापूर्तिके पुरस्कार से इन्हें और भी दर्पपूर्ण बना दिया है। भगवान् और दूर चले गये हैं। मेरे मनमें एक-एक प्रश्न उठता है—क्या भगवान्‌को इस सबकी आवश्यकता है या आदमीने भगवान्‌को ढँक दिया है? इसका उत्तर कुछ भी दे दिया जाय; वह सब जगह, सबके लिए उपयुक्त हो. यह संभव नहीं। समाजवादको महलोंके सामने खड़ी झोपड़ीके प्रति आक्रोश हो सकता है, समाजवादी प्रेरणा यथार्थमें महलोंको देखकर पनपती है; पर धार्मिक जीवनमें समाजवादको प्रवेश नहीं मिल सकता, नहीं मिलेगा।

मैंने मन्दिरोंके ऐश्वर्यको बाहर पड़े, खड़े भिखारियोंसे नापा है। कंकालमात्र अपंग और कुत्सितसे लोगोंको भीड़ मन्दिरके भीतर विराजमान भगवान्‌के नामपर पाँच पैसे, दस पैसे माँगती है। लाख-लाख दर्शनार्थी नित्य उन मूर्तियोंका ऐश्वर्य बढ़ानेको आ जुटते हैं। प्रसाद बिकता है, भगवान्‌के दर्शन बिकते हैं और पूजकोंकी महत्ताका मूल्य लगता है। इस मानवकृत प्रपंचमें भगवान्‌का अस्तित्व कहीं है, इसीमें संशय होने लगता है।

मन्दिरोंमें जा रही भीड़से मैं प्रश्न करता हूँ: 'तुम क्यों जा रहे हो?' उत्तरमें वे घृणासे मेरी तरफ देखते हैं। मुझे नास्तिक समझते हैं। यह शब्द सबसे बड़ी गाली है। भगवान्‌का आकर्षण किसीको खींच रहा है, यह बात तर्कको स्वीकार नहीं। कलात्मक मूर्तिका सम्मोहन हर कोई समझ ले, यह व्यावहारिक रूपमें नहीं। फिर कौन-सी भावना है, जो इस भीड़को बावला किये दे रही है? जिनके लिए मन्दिर नित्यकर्म बन गया, उनके लिए भगवान्‌का अस्तित्व समाप्त हो गया; क्योंकि यह प्रकृति है। मनको किसी भी बातका अभ्यास डाल दिया जाय, वह उसे क्रम बना लेता है और आदतमें आनन्द नहीं रहता। किसी भी बातको अभ्यासका रूप देनेपर वह बोध भर जाता है, उत्तेजना नहीं दे पाता। सिगरेट पीनेवालेको सिगरेटकी गन्ध नहीं आती, रह जाता है आत्महीन अभ्यास।

अभ्याससे सिद्धि मिलती है—यह विश्वजनीन मान्यता है, पर दास-भावनाका अभ्यास एक व्यसनमात्र है। उससे कुछ मिल जाना आनुषंगिक बात है। दूसरा पक्ष और है इसी प्रश्नका! धर्मकी सार्थकता धारण करनेमें है, पर इस धारणका लक्ष्य क्या है? जहाँतक नैतिकता, मानवता और सामाजिक सुख-शान्तिका प्रश्न है, धर्म उसके लिए अमोघ ओषधि है। लेकिन उस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्मको देह-व्यापार और अभ्यासमात्र मान लेनेपर क्या नैतिकता स्थापित हो जायगी ? मन्दिरमें जाने और भगवान्‌की देहलीपर सिर रगड़ लेनेसे धर्म धारण हो जायगा ? ये ऐसी विसंगतियाँ हैं, जिन्होंने धर्मका सम्बन्ध मनसे हटाकर निष्प्राण क्रियासे जोड़ दिया है। एक स्थलपर आकर व्यक्ति उस क्रियाके रूढ रूपको स्वीकार कर लेता है। उसे जो सन्तोष मिलता है, वह अभ्यासकी पूर्तिका है, जैसे सिगरेट पीनेवालेको सिगरेट पीकर मिलता है।

धर्म, भक्ति और उपासनावाले से यह पूछा जाय कि उसे इनसे क्या मिला ? तो वह निरुत्तर हो जायगा। उसके पास दिखानेको कुछ नहीं, हो भी नहीं सकता। उसका गन्तव्य है मोक्ष। मोक्ष एक ऐसी स्थितिका प्रतीक है, जो बन्धनसे उपजी है। अर्थात् बन्धन यदि लौकिक प्रतीति है, तो मुक्ति अलौकिक। भक्त अपने भगवान्‌के पास अकिंचन बनकर जाता है मुक्ति मांगने। मन्दिरमें जानेवाले कुछ न कुछ माँगने ही जाते हैं। जो मुक्ति माँगते हैं, वे यह क्यों नहीं सोचते कि जिस पूर्ण पुरुषसे मांग रहे हैं, वह स्वयं मुक्त नहीं है। प्रत्येक युगने उसे अवतार लेनेको वाध्य किया है, मानवकी आवश्यकताके अनुसार उसे रूप ग्रहण करना पड़ा है। मन्दिरका शिलाखण्ड मुक्ति दे सकता है, यह कभी सम्भव ही नहीं हुआ। मूर्तिकी सेवा करनेवाले मठाधीशसे कोई पूछकर देखे कि उसे मूर्तिको सजाने-संवारनेका मात्र अभ्यास ही है अथवा कुछ और भी ? यह तथ्य मात्र आजके वैज्ञानिक आधार और तर्क पर ही खरा नहीं उतरता, प्राचीन मान्यताओं और शास्त्रोंके आधारपर भी यही निष्कर्ष निकलता है। यदि ऐसा न होता तो दर्शन, उपनिषद् वेद और वेदान्त सब व्यर्थ हो जाते। निराकार और स्वतः-प्रकाशकी कल्पना ही न हो पाती। आजके युगकी एक बात मानी जा सकती है कि इसने यान्त्रिक विकासके कारण सारे संसारको वहिर्मुख कर दिया है। मन्दिरोंके भीतर न सही, पूजकोंके घरमें भगवान्‌की अर्चना और तपस्याकी कृच्छ्रताकी समाप्ति सुविधाके रूपमें जुट गयी है। कोई आश्चर्य नहीं, पुजारीके घरमें फिल्मी गीत बज रहे हों और दीवारपर किसी कामिनीका अर्धनग्न चित्र टँग रहा हो। जिस मन्दिरसे मुक्ति मिलती है, जिस मूर्तिसे बन्धन टूटनेकी गुहार की जाती है, क्या उसका परिवेश कहीं भी, किसी भी रूपमें प्रेरणा दे पाता है ? क्या बाहर खड़े दयनीय भिखारियोंकी उपस्थिति मुक्तिका सम्बन्ध यत्किंचित् रूपमें भी मूर्तिके साथ जोड़ पाती है ?

भारतकी यह परम्परा आज पश्चिम देशोंमें चली गयी है। गोरांग और यान्त्रिक जालमें जकड़ा हुआ समाज रामनामी दुपट्टा लगाकर कीर्तन करता है, मादक पदार्थोंका सेवन करता है, तीव्रतम एल० एस० डी० को मोक्षका मार्ग मानकर धुत रहना चाहता है। क्या इन सबसे मुक्ति मिल जायगी ? यह प्रश्न आस्तिकता अथवा नास्तिकताका नहीं है, प्रश्न है युग-व्यामोह का, बुद्धि का, प्रत्यक्ष का। क्या तत्त्वतः मोक्ष जैसी कोई स्थिति है ? अथवा बन्धनोंको भोगकर मुक्तिकी परिकल्पना की जा रही है ?

मुझे सबसे बड़ी दया उस व्यक्तिपर आती है जो भगवान्‌से मुक्ति माँगता है, उसे सर्वशक्तिसम्पन्न मानकर अपनेको हीन-नगण्य मानता है। मेरे इस प्रश्नपर कि 'भगवान्‌को इस दुनियासे कोई लेना-देना नहीं और निष्काम भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है, तो इस भक्तिका मार्ग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पकड़कर भगवान्‌से क्या प्राप्त कर लोगे?' वे चुप हो जाते हैं। वे पग-पगपर आदमी की सामर्थ्यको जानकर भी भगवान्‌को ही मानते हैं। उस शिलाखण्डको देवत्व देनेवाला मानव जब उस मूर्तिके हाथ बिक जाता है, बड़ा दयनीय हो जाता है—जैसे आजका मानव अपने द्वारा निर्मित यन्त्रोंकी भीड़में फँस गया है और असहाय बनकर टुकुर-टुकुर ताक रहा है।

सारे वाक्य कहते हैं—'अरे मानव! तू स्वयं ही वह है। यह सारा विस्तार मिलकर पूर्ण पुरुष बनता है। व्यक्ति उसका एक घटक है—वैसा ही और उतना ही।' ऐसी स्थिति में यह प्रश्न नहीं उठता कि भगवान् जब निराकार, निर्लिप्त है, तो संसारसे उसे कुछ लेना-देना नहीं। व्यक्तिका सम्पूर्ण व्यक्तित्व विविध अंगोंसे निर्मित होता है। कोई हाथसे यह कहे कि वह काम क्यों कर रहा है अथवा केन्द्र मस्तिष्कसे यह पूछे कि वह हाथसे काम क्यों लेता है? ये प्रश्न व्यर्थ हो जाते हैं। उसकी सम्पूर्णताके लिए यह विस्तार आवश्यक है और गतिके बिना वह सम्पूर्णता अधूरी रहती है। मानवके रूपमें वह क्षुद्र है, पर कम नहीं। उसका वैभव ऐसा है, जिसने उस निराकारको रूप दिया है। उसकी कल्पना ऐसी है, जिसने ब्रह्मको आवृत कर लिया है। इतना शक्तिसम्पन्न होकर भी वह याचना करता है, इससे बड़ी दयनीयता क्या होगी?

प्रश्न है, क्या मोक्ष-जैसी स्थिति वास्तवमें है? यदि है तो उसकी आजके सन्दर्भमें उपयोगिता भी है? उत्तर देह-विज्ञान, मनोविज्ञान और नृतत्त्व-शास्त्रके आधुनिक आयामोंसे ढूँढनेपर भी स्वीकार ही रहेगा। यह स्वीकार उतना ही सत्य है, जितना सत्य बन्धन है। सामान्यतया यह मान लिया जाता है कि इस संसारके अपने तकाजे हैं, शरीर और मनका अपना धर्म है। व्यक्तिका अन्तरंग बाह्य प्रकृतिसे सूत्रबद्ध है और उसका शरीर इन्हीं दृश्य पदार्थोंसे बना है। इसलिए व्यक्तिके अन्तस्‌का और बाह्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। मुक्तिका अर्थ समझनेके लिए यह अच्छा रहेगा कि बन्धनको समझ लिया जाय, क्योंकि बन्धनका नाश ही मुक्ति है। बन्धनको शास्त्रीय एवं पारिभाषिक शब्दसे हटाकर तनावसे सम्बद्ध कर लेते हैं। तनाव इस संसारका प्रतीक है और व्यक्ति इसे भोगता है। एक शिशु अबोध-अवस्था में जब भूखा होता है, रोता है। किसी शारीरिक व्याधिसे पीड़ित होता है तो शिथिल हो जाता है अथवा तड़पने लगता है। ये सब तनावके कारण हैं, तनावकी विविधरूपा अभिव्यक्ति है। मस्तिष्कके विकासके साथ इन्द्रियोंकी क्षमता बढ़ती है और यह वृद्धि उसके तनावका क्षेत्र भी बढ़ा देती है। जितने बड़े समुदायमें व्यक्ति रहता है, उतना ही अधिक तनाव-ग्रस्त हो जाता है अथवा वह अपने स्वको जितना विस्तृत करता है, उतना ही उसका तनाव बढ़ जाता है। आजके व्यक्तिकी यह स्थिति है कि वह इन उत्तेजनाओंको पिंजरेके पक्षीके सत्यस्वरूप पिंजरेकी तरह सत्य मान बैठा है।

आजका सामाजिक जीवन व्यक्तिगत स्वतन्त्रतासे त्रस्त है, समाजका जो स्वरूप पाँच दशक पहले था, उसने व्यक्तिके स्वत्वको आक्रान्त कर रखा था और उससे मुक्ति पानेके लिए व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी आशा की गयी थी और उस व्यक्ति-स्वातन्त्र्यने व्यक्तिको 'इतो नष्टस्ततो भ्रष्टः' चेतनाकी स्थितिमें ला दिया। समाजके बन्धन क्षीण हो गये, पर सामाजिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मान्यता मृत नहीं हुई, नहीं हो सकती। आर्थिक प्रतिस्पर्धाने व्यक्तिको अभावोंमें जकड़ लिया और यन्त्रोंके जंजालने हृदयके रसका शोषण कर लिया। इसलिए उसके तनाव आज चरम सीमामें पहुँच गये हैं। यह मन्दिरोंमें जा रही भीड़, ये पिकनिकपर जा रहे लोग और सिनेमा तथा पार्कोंमें जुट रहे समूह जीवनके तनावसे मुक्त होने को लालायित हैं। कुछ तनावको तनावसे कम करना चाहते हैं, कुछ उसे भूलकर मुक्तिका अनुभव कर रहे हैं, पर इन सबसे उन्हें मुक्ति नहीं मिल रही है।

भारतीय शास्त्र जिनको बन्धन मानते हैं और मनोविज्ञान जिनको तनाव कहता है, वे भावना-जगत्‌की प्रतीतियाँ हैं। आजकी उत्तेजनाकी क्रिया द्वारा शान्ति एक बिन्दु है, चरम उपलब्धि नहीं। उत्तेजना और शान्तिमें एक प्रकारकी रिक्तता है, किसी तनावके समाप्त हो जाने और दूसरा तनाव होने तकके बीच जो रिक्तता है, उसका उपाय आजके विज्ञानके पास नहीं है। मनका, देहका और व्यक्तिके शरीर-तन्त्रका एक स्वभाव है कि उसमें शक्तिका उत्पादन होता है और ये तनाव उस शक्तिका उपयोग करते रहते हैं। अन्यथा यह एकत्रित हो रही ऊर्जा उसे विखण्डित करके रख देगी। शरीरमें प्रतिपल उत्पन्न हो रहे तापको यदि निकलने की सुविधा नहीं होती, तो वह ताप शरीरको जलाकर राख कर देता। इसके समानान्तर मनकी स्थिति है। मनकी शक्तिको यदि ये तनाव कम नहीं करते, तो वह भी विकृत होकर नष्ट हो जाता। किन्तु ये उस शक्तिका निस्सारण करते रहते हैं, सोखते रहते हैं।

इसका आशय यह नहीं कि ये तनाव मुक्तिके प्रतीक हैं। इन उत्तेजनाओंकी शान्तिको मुक्तिका रूप मान लेना वैसा ही भ्रम होगा, जैसा पिंजरेकी शलाखोंको मुक्तिका प्रतीक मान लेना। यथार्थ यह है कि व्यक्तिके भीतर एक चेतना है, किसी विराट्‌का अंश है। यह अंश उसी समयतक अपने क्षुद्रता-बोधसे ग्रस्त रहता है, जबतक उसे आत्मदर्शन नहीं होता। अंशका यह भेद भी उसी समयतक रहता है, अन्यथा स्वरूप-दर्शन होनेपर वह विशालता उसे अपने ही रूपमें दिखने लगती है। देहके तापका उपयोग करनेकी व्यवस्था शरीरकी प्रकृति है, पर मनके सूक्ष्म और शक्तिशाली ऊर्जाकोषको नियन्त्रित-नियमित करनेकी स्वयं सिद्ध प्रक्रिया सर्वांशतः नहीं है, क्योंकि मन स्थूल और सूक्ष्मको जोड़नेवाला अनुभूति-केन्द्र है। अतः उसे विनियुक्त करनेका मार्ग मानवने मननके सहारे ढूँढ़ा है। यह निर्विवाद रूपसे कहा जा सकता है कि तनाव और मुक्ति, उत्तेजना और शान्तिका एक चक्र है। इस चक्रसे मुक्त करना बड़ा कठिन काम है। होता यह है कि शान्तिके पश्चात्‌की रिक्तताको मुक्ति मान लिया जाता है, जब कि वह रिक्तता दूसरे तनावके भोगनेकी तैयारी होती है। मनकी प्रकृतिके अनुसार उसे अपने व्यापारसे रोका नहीं जा सकता। जो ऊर्जा वह स्वयम् उत्पन्न करता है, जो शक्ति उसे देहसे मिलती है, उसका उपयोग होना आवश्यक है। इसका सीधा-सा मार्ग है। जिनको विकार कहा गया है, जो तनावका कारण हैं, उनसे मनको विमुख किया जा सकता है। किन्तु वह मुक्तिकी वास्तविक स्थिति नहीं है। तनावसे मुक्त हो जाना मोक्ष नहीं है, क्योंकि वह स्थिति सामान्य स्थितिमें स्थायी नहीं रह सकती। इसलिए मनकी अन्तर्मुखता मनको अपने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवदान : पौराणिक आख्यायिका

'श्रीकृष्ण-किङ्कर'

★

पाण्डवोंके अश्वमेध यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिए भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पधारे। बड़े भाई बलराम भी साथ थे। प्रद्युम्न, सात्यकि आदि प्रमुख यादववीर भी वहाँ पहुँच गये थे। सुभद्रा भी श्रीकृष्णके साथ ही द्वारकासे वहाँ आयी। पाण्डव धनके लिए हिमालयकी यात्राकर वहाँसे लौट रहे थे। अभी मार्गमें ही थे।

इसी समय अभिमन्युकी पत्नी उत्तराके गर्भसे एक शिशुका जन्म हुआ, किन्तु वह निष्प्राण था। समाचार पाकर श्रीकृष्ण सात्यकिके साथ अन्तःपुरमें गये। उधरसे उनकी बुआ कुन्ती उन्हींके पास यह पुकारती आ रही थी : कि 'वासुदेव! दौड़ो-दौड़ो, अनर्थ हो गया!' उनके पीछे

विराट् रूपसे परिचित कराती है और उसकी शक्ति आत्मदर्शनसे तृप्त होकर मुक्तिका प्रतीक बन जाती है।

उत्तेजनाका क्षेत्र कितना व्यापक है—इसका अनुभव हम नहीं कर सकते, क्योंकि जीवनमें इसके अतिरिक्त कुछ देखा भी नहीं। सामाजिक जीवन-पद्धति, व्यक्तिकी अपनी परिकल्पना, आशा-आकांक्षा, क्रिया-प्रतिक्रिया मनको आविल कर देती हैं। इन बन्धनोंका अभाव उसे हतप्रभ करता है। यदि इस चक्रव्यूहसे उसे क्षणिक मुक्ति मिलती है, तो वह धन्य हो जाता है, अपनी साधनाको सफल मान बैठता है, भगवान्‌की प्रतीति कर लेता है। सांसारिक आकर्षण बड़ा प्रबल है और उसकी प्रतीति ही तनावको जन्म देती है। उसे भूल जाना सरल न हो, तो भी सम्भव अवश्य है। मछली चाहे धाराके अनुकूल बहे या प्रतिकूल, रहती पानीमें ही है। मन चाहे प्रेमकी मधुर अनुभूतिमें पगा रहे या द्वेषकी कटुतामें, वह है सांसारिक परि-सीमामें ही। यह परिभाषा मुक्तिकी नहीं। मुक्ति मांगनेकी वस्तु नहीं पुरुषार्थ-लभ्य है। व्यक्तिके आत्मदर्शन करनेका अर्थ ही मुक्ति है।

जिस मानवने ये भव्य मन्दिर बनाये हैं, शिलाखण्डको भगवान् बनाया है वह अपनी सामर्थ्यसे ही अपरिचित है। कितना अच्छा होता यदि वह भगवान्‌के मोहसे छुटकारा पाकर अपने आपको ही समझ सकता। शास्त्र और उनके निर्देश स्पष्ट हैं, वे कल्पना नहीं हैं। मोक्ष-दाताका निवास 'वैकुण्ठ' कहलाता है। वैकुण्ठ शब्द अपने आपमें स्पष्टार्थ है। कुण्ठाहीन स्थिति तनावरहित स्थिति और उत्तेजना-शून्यता ही वैकुण्ठ है और ऐसा वैकुण्ठ व्यक्तिके अपने मनमें है। तनावसे छुटकारा पाकर उस स्थितिको शाश्वतिक बनानेका अर्थ ही मुक्ति है और इसके लिए मनको अन्तर्मुख करना ही सरल उपाय है। फिर ये मूर्तियाँ एक दर्पण बन जायँगी, जिसमें व्यक्तिका अपना रूप दीखेगा।

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्य बन्धु-बान्धवों की स्त्रियाँ भी थीं। वे सबकी-सब करुण स्वरमें बिलखती-रोती रहीं।

कुन्तीने कहा : 'यदुवीर! यह तुम्हारे भानजे अभिन्युका बालक है, जो अश्वत्थामाके अस्त्रसे मरा हुआ ही उत्पन्न हुआ है। केशव! इसे प्राणदान देकर हम सबके जीवनकी रक्षा करो। पाण्डववंश इस बालकके साथ ही डूबा जा रहा है।'

यह कहते-कहते कुन्ती दुःख-कातर हो जमीन पर गिर पड़ीं। यही दशा द्रौपदीकी भी हुई। यह देख सुभद्रा अपने भाईकी ओर निहारती हुई फूट-फूटकर रोने लगी और आर्त होकर बोली—'भैया! द्रोण-पुत्रने भीमसेनको मारनेके लिए जो सींकका बाण उठाया था, वह उत्तरापर, अर्जुनपर और मुझपर गिरा। अश्वत्थामाने आज पाण्डवोंका सर्वस्व लूट लिया। यदि यह बालक जीवित नहीं हुआ तो मेरे जीवनका भी अन्त ही समझ लो। भैया! मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ, जिसका जवान बेटा मारा गया है, वह अभागिनी माँ हूँ और हूँ तुम्हारी शरणमें आयी एक दयनीया अबला। मुझपर दया करो भैय्या!'

स्थिति गम्भीर थी। भगवान् श्रीकृष्णने कार्यकी गुरुतापर भलीभाँति विचार करके कहा : 'बहन! रो मत, तेरी इच्छा पूर्ण होगी।' यों कहकर वे सूतिकागारकी ओर चले। द्रौपदीने पहले ही पहुँचकर विराट-पुत्रीको सावधान किया—'बेटो! तुम्हारे श्वसुर-तुल्य सम्मान्य श्रीकृष्ण यहाँ आ रहे हैं।' उत्तराने आँसू पोंछकर रोना बन्द कर दिया। अपने सारे अङ्गोंको वस्त्रसे ढँक लिया। भगवान्‌को निकट आया देख वह तपस्विनी बाला विलाप करती हुई गद्गद कंठसे बोली : 'प्रभो! आपके भानजेके इस पुत्रके प्राणोंकी भीख माँगती हूँ।' यों कहती हुई उत्तरा उन्मादिनी-सी होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसकी ऐसी अवस्था देख वहाँकी सारी स्त्रियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं। पाण्डवोंका वह भवन दो घड़ीतक आर्तनादसे गूँजता रहा।

उत्तराका करुण विलाप सुनकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने आचमन करके आश्वत्थामाका चलाया ब्रह्मास्त्र शान्त कर दिया और कहा—'बेटी उत्तरा! मैं झूठ नहीं बोलता। मैंने जो प्रतिज्ञा की है, वह सत्य होकर ही रहेगी। मैंने खेलकूदमें भी, कभी मिथ्या भाषण नहीं किया और न युद्ध में कभी पीठ दिखायी। इस सत्यके प्रभावसे अभिमन्युका यह बालक जीवित हो जाय। यदि धर्म और धर्मात्मा ब्राह्मण मुझे विशेष प्रिय हों, यदि मैंने कभी अर्जुनसे विरोध न किया हो, यदि मुझमें सत्य और धर्मकी निरन्तर स्थिति बनी रहती हो तथा यदि मैंने कंस और केशीका धर्मके अनुसार वध किया हो, तो इस सत्यके प्रभावसे यह बालक फिर जीवित हो जाय।'

भगवान्‌के इतना कहते ही बालकमें प्राण-संचार हो गया, नवचेतना आ गयी और सब ओर आनन्द ही आनन्द छा गया।

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि मैं भी कुन्ती बन सकती····!

आचार्य श्रीसीताराम चतुर्वेदी

★

संस्मरण, भावोद्वेग तथा आशंसाकी सम्मिलित रूप-शैलियों तथा तद्भवनिष्ठ भाषा-शैलीमें देखिये कि लेखिका क्यों चाहती हैं·····यदि मैं कुन्ती बन सकती···!

मैं कुन्ती बनना चाहती हूँ। इसलिए नहीं कि वे पाण्डवोंकी माता थीं, वसुदेवजीकी बहिन थीं, भगवान् श्रीकृष्णकी बुआ थीं और जन्मका नाम 'पृथा' होनेपर भी राजा कुन्तिभोजके यहाँ लालन-पालन होनेके कारण 'कुन्ती' कहलाती थीं। वरन् इसलिए कि वे बालपनसे ही बड़ी सुशीला, सदाचारिणी, संयमशील और भक्तिमती थीं। मुझे स्मरण है वह घटना, जब राजा कुन्तिभोजके यहाँ एक तेजस्वी ब्राह्मण अतिथि बनकर आये और उनकी सेवाका भार बालिका कुन्तीपर सौंपा गया। मैं जानती हूँ कि राजपुत्री होकर भी पृथाने आलस्य और अभिमान छोड़कर शुद्ध मनसे उन ब्राह्मण देवताकी सेवा की, जिनका व्यवहार इतना अटपटा था कि मैं होती तो घबरा उठती, खीझ उठती। वे कभी तो अनियमित समयपर आते, कभी आते ही नहीं; कभी ऐसी वस्तु माँग बैठते, जिसका मिलना कठिन; पर पृथाके माथेपर एक सलवट नहीं। वे इस प्रकार उनका काम कर देतीं, मानो उन्होंने पहलेसे ही उनके लिए सब तैयारी कर रक्खी हो। उनकी सेवा, उनका शील और उनका संयम देखकर ब्राह्मणदेव भी चकित रह गये।

इसी निष्काम भाव, तत्परता एवं लगनसे उस ब्राह्मणदेवकी सेवा करते हुए पूरा एक वर्ष बीत गया। उनकी सेवासे प्रसन्न होकर ब्राह्मणदेवताने कहा : 'बेटी! मैं तुम्हारी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ। कोई वर माँगो।'

कुन्तीने ब्राह्मणदेवतासे कहा—'भगवन्! आप और पिताजी मुझपर प्रसन्न हैं, मेरे लिये यही सबसे बड़ा वरदान है।'

जब कुन्तीने कोई वर नहीं माँगा तब उन्होंने कहा : 'मैं तुम्हें देवताओंका आवाहन करनेका मन्त्र देता हूँ, इसे ग्रहण करो।' वे अस्वीकार कैसे कर सकती थीं? उन्होंने मन्त्रका उपदेश देते हुए कहा—'इन मन्त्रोंके बलसे तुम जिस देवताका आवाहन करोगी, वही तुम्हारे अधीन हो जायगा।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यों कहकर ब्राह्मणदेवता अन्तर्धान हो गये। ये ब्राह्मण भी और कोई नहीं, साक्षात् महर्षि दुर्वासा थे, जिन्हें प्रसन्न कर लेना कोई साधारण बात नहीं थी।

× × ×

समय आने पर कुन्तीका विवाह महाराज पाण्डुसे हुआ। पाण्डु अधिक दिनोंतक जीवित न रह सके। पतिका स्वर्गवास हो जानेपर कुन्तीने निश्चय किया कि अपने बच्चोंकी रक्षाका भार अपनी छोटी सौत (माद्री) पर सौंप सती हो जाऊँ। माद्रीने कहा : 'बहिनजी, मैं अभी युवती हूँ। मैं ही पतिदेवका अनुगमन करूँगी। आप मेरे पुत्रोंकी रक्षा कीजिये।' कुन्तीने माद्रीकी बात मान ली और उसके पुत्रोंको अपने पुत्रोंसे बढ़कर प्यारसे पालती रही।

पतिकी मृत्युके पश्चात् कुन्तीदेवीका जीवन बराबर कष्टमें बीता। दुर्योधनने उन्हें और उनके पुत्रोंको कष्ट देनेमें कोई कोर-कसर नहीं रखी। उसने वारणावतमें लाखका भवन बनाकर पाँचों पाण्डवों और माता कुन्तीको जला डालनेकी योजना बनायी, पर विदुरजी की चातुरीसे वे सब बच निकले।

लाक्षा-भवनसे निकलकर जब वे अपने पुत्रोंके साथ एकचक्रा नगरीमें रहने लगे, तो उन दिनों वहाँकी प्रजा संकटमें पड़ी हुई थी। उस नगरीके पास एक बकासुर नामका राक्षस रहता था, जिसके लिए नगरवासियोंको प्रतिदिन बारी-बारीसे एक गाड़ी अन्न और दो भैंसे पहुँचाने पड़ते। साथ ही जो मनुष्य वह सामग्री लेकर जाता, उसे भी राक्षस चट कर जाता था।

जिस ब्राह्मणके घर पांडवगण रहते थे, एक दिन उसकी बारी आ गयी। ब्राह्मण-परिवारमें रोना-पीटना मच गया। यह सुनकर कुन्तीका हृदय दयासे भर आया। उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अपनी स्त्रीसे कह रहा है। 'तुम कुलीन, शीलवती और बच्चोंकी माँ हो। मैं अपने जीवनकी रक्षाके लिए तुम्हें उस राक्षसके पास नहीं भेज सकता।' यह सुनकर ब्राह्मणी बोली : 'नहीं, पत्नीका सनातन कर्तव्य है कि वह अपने प्राण देकर भी पतिकी रक्षा करे। स्त्रियोंके लिए इससे बड़े सौभाग्यकी क्या बात है कि वह अपने पतिसे पहले परलोक-वासिनी हो जाय।' माँ-बापकी दुःखभरी बातें सुनकर उनकी बेटी बोली : 'पिताजी! धर्मके अनुसार आपको एक न एक दिन मुझे छोड़ना, दान देना ही पड़ेगा। तब आज ही मुझे राक्षसके लिए छोड़कर अपनी रक्षा क्यों नहीं कर लेते? सन्तानका धर्म है कि प्राण देकर भी अपने माता-पिताको दुःखसे बचाये।' कन्याकी बात सुनकर माँ-बाप दोनों रोने लगे और कन्या भी रो उठी। यह देखकर ब्राह्मणका नन्हा-सा बालक एक तिनका उठाकर हँसते हुए पूछने लगा : 'आप लोग रोते क्यों हैं? मैं उसे इससे मार डालूँगा।'

यह सब देख-सुनकर कुन्ती बोली : 'महाराज! आपके तो एक पुत्र और एक कन्या हैं, पर आपकी दयासे मेरे पाँच पुत्र हैं। राक्षसको भोजन पहुँचानेके लिए मैं उनमेंसे किसीको भेज दूँगी, आप घबराइये मत।'

ब्राह्मणने कुन्तीका यह प्रस्ताव अस्वीकार करते हुए कहा : 'देवि! आपका वचन आपके अनुरूप ही है। किन्तु मैं अपनी रक्षाके लिए अपने अतिथिकी हत्याका पाप नहीं ले सकता।' जब कुन्तीने उन्हें समझाया कि मेरा पुत्र बड़ा बलवान्, मन्त्रसिद्ध और तेजस्वी है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता तब बड़ी कठिनाईसे ब्राह्मणको विश्वास दिलाकर कुन्तीने भीमसेनको राक्षसके पास भेज दिया और भीमसेनने उसे मार डाला।

× × ×

महाभारत-युद्धके समय तक वे हस्तिनापुरमें ही रहीं और युद्धसमाप्तिके पश्चात् जब धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट् पदपर अभिषिक्त हुए तथा इन्हें राजमाता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उस समय वे पुत्र वियोगसे दुखी अपने जेठ-जेठानी (धृतराष्ट्र और गांधारी) की सेवामें अपना समय बिताने लगीं। यहाँतक कि जब वे दोनों युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर बन जाने लगे, तब ये भी चुपचाप उनके संग हो लीं और युधिष्ठिर आदिके समझानेपर भी अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं हुईं।

× × ×

मैं कुन्ती इसलिए बनना चाहती हूँ कि जीवनभर दुःख और क्लेश भोगनेके पश्चात् जब सुखके दिन आयें, उस समय भी सांसारिक सुखभोगको ठुकराकर, स्वेच्छासे त्यागकर उन्होंने तपस्या एवं सेवाका जीवन स्वीकार किया। जिन जेठ-जेठानीसे उन्हें तथा उनके पुत्रों एवं पुत्र-बन्धुओंको कष्ट, अपमान एवं अत्याचारके अतिरिक्त कुछ नहीं मिला, उन्हीं जेठ-जेठानीके लिए उन्होंने सर्वस्व त्याग दिया।

जब वे धृतराष्ट्र और गांधारीके साथ बन जा रही थीं तब भीमसेनने पूछा: 'माँ! यदि तुम्हें अन्तमें यही करना था तो फिर व्यर्थ हम लोगोंको उत्साह देकर इतना नर-संहार क्यों करवाया? हमारे वनवासी पिताकी मृत्युके पश्चात् हमें वनसे नगरमें क्यों लायी?'

उस समय कुन्तीदेवीने उन्हें उत्तर दिया: 'बेटा! तुम लोग कायर बनकर हाथ-पर हाथ धरे न बैठे रहो, क्षत्रियोचित पुरुषार्थ त्यागकर अपमानपूर्ण जीवन न व्यतीत करो, शक्ति रहते अपने न्यायोचित अधिकारसे सदाके लिए हाथ न धो बैठो, इसीलिए मैंने तुम लोगोंको युद्धके लिए उकसाया। अपने सुखकी इच्छासे ऐसा कभी नहीं किया। मुझे राज्य-सुख भोगनेकी तनिक भी इच्छा नहीं। मैं तो अब तपस्या करके अपने वनवासी जेठ-जेठानीकी सेवामें रहकर अपने शेष जीवनमें तप कर पतिलोक जाना चाहती हूँ। तुम लोग सुखपूर्वक घर लौट जाओ और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए अपने परिजनोंको सुख दो।'

कुन्तीदेवी अपने जेठ-जेठानीके साथ बन चली गयीं और अन्त समयतक उनकी सेवामें रहकर उन्हींके साथ दावाग्निमें जलकर योगियोंकी भाँति मुक्त हो गयीं।

इस प्रकार उनका जीवन सदा विपत्तियोंमें ही कटा, पर-विपत्तिमें ही उन्हें परम सुख मिलता था। उन्होंने भगवान्‌से यही प्रार्थना की थी।

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

'हे जगगुरु! हमें सदा विपत्तियाँ ही मिलती रहें जिससे निरन्तर आपका दर्शन तो होता रहे और आपका दर्शन होनेसे संसारके आवागमनसे छुटकारा मिल जाय।'

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक अज्ञात कृष्ण-चरित्रग्रन्थ

व्रजविलास-सारावली

श्री अगरचन्द नाहटा

★

भारतीय महापुरुषोंमें श्रीराम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध चारोंका बड़ा प्रभाव रहा है। राम और कृष्णकी भक्तिका प्रचार बहुत अधिक हुआ और महावीर-बुद्धके उपदेश तो जैन-धर्म और बौद्ध-धर्मके रूपमें प्रसिद्ध है ही। चारोंमें भी श्रीकृष्णने जनसाधारणको सर्वाधिक आकृष्ट किया। सोलहवीं शताब्दीमें श्रीकृष्णके अनेक भक्ति-संप्रदाय प्रवर्तित हुए। हिन्दी-साहित्यमें श्रीकृष्णसम्बन्धी रचनाओंकी संख्या बहुत अधिक है। उनकी लीलाके सम्बन्धमें हजारों छोटी-मोटी रचनाएँ सैकड़ों कवियोंने लिखी हैं और उनका प्रचार भी बहुत हुआ। लेकिन जिस तरह रामचरितको लेकर तुलसीदासने एक उत्तम काव्य 'रामचरित-मानस' अर्थात् रामायण लिखी, उस तरहका कृष्णके जीवनसम्बन्धी व्यवस्थित और बड़े काव्य कम ही लिखे गये हैं। जो लिखे गये, वे भी तुलसी-रामायण जैसे उच्च कोटिके नहीं, साधारण-से हैं। वैसे रामायणकी तरह 'कृष्णायन' नामक तीन काव्य लिखे गये हैं, पर श्रीकृष्णसम्बन्धी चरित्र-काव्योंमें वल्लभ-संप्रदायके व्रजवासीदास-रचित 'व्रज-विलास' काव्य शायद सबसे बड़ा और काफी प्रसिद्ध भी हुआ। डाक्टर रामकुमार वर्माने 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास' में लिखा है : 'व्रजभाषामें केवल व्रजवासीदाससे व्रजविलासका कुछ प्रचार कृष्ण-भक्तोंमें हुआ १८वीं शताब्दीके अन्तमें व्रजवासीदासने 'व्रजविलास' लिखकर वल्लभ-सम्प्रदायके अन्तर्गत राधाका स्थान विशेष निर्दिष्ट किया।'

सुप्रसिद्ध आलोचक श्री रामचन्द्र शुक्लने अपने 'हिन्दी-साहित्यके इतिहास'के (१४वें संस्करण) पृष्ठ १५९ पर लिखा है : 'संवत् १८०९ में व्रजवासीदासने रामचरित-मानसके ढंग पर दोहा-चौपाइयोंमें प्रबन्ध काव्यके रूपमें कृष्ण-चरित्रका वर्णन किया। वह ग्रन्थ बहुत साधारण कोटिका हुआ और उसका वैसा प्रसार न हो सका।' पता नहीं, शुक्लजीने 'व्रज-विलास'का रचनाकाल १८०९ कैसे यहां लिख दिया? आगे चलकर आपने पृ० ३४७ में व्रजवासीदासका परिचय देते हुए इसका रचनाकाल संवत् १८२७ लिखा है और वही ठीक है। उन्होंने व्रजवासीदासको वृन्दावन-निवासी बतलाते हुए व्रजविलासके सम्बन्धमें लिखा है। "इस ग्रन्थमें कथा भी सूरसागरके क्रमसे की गयी, पर बहुतसे स्थलोंपर सूरके शब्द और भाव भी चौपाइयोंमें करके रख दिये गये है। यह बात ग्रन्थकारने भी स्वीकार की है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या मैं कछु बुद्धि नहीं मेरी। उक्ति जुक्ति सब सूरहि केरी॥

इन्होंने तुलसीका छन्द-क्रम ही लिया है। भाषा शुद्ध व्रजभाषा ही है। व्रजविलासमें कृष्णकी विभिन्न लीलाओंका जन्मसे लेकर मथुरा-गमन तकका वर्णन किया है। भाषा सीधी-साधी सुव्यवस्थित और चलती हुई है। व्यर्थ शब्दोंकी भर्ती न होनेसे उसमें सफाई है। इसमें अधिकतर क्रीड़ामय जीवनका ही चित्रण है। साधारण श्रेणीके कृष्णभक्त पाठकोंमें इसका प्रचार है।"

हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोजके विवरण-ग्रन्थोंमें व्रजविलासकी कई प्रतियोंका विवरण छपा है। स्वयं ग्रन्थका परिमाण १०,००० श्लोकोंका बतलाया है।

सबको नुष्टुप छन्द करि, दशसहस्र परिमाण।

व्रजविलासका रचनाकाल ग्रन्थके प्रारम्भमें ही लिख दिया गया है। उसके अनुसार संवत् १८२७ की माघ सुदी पांचम (वसन्तपंचमी) के दिन इसकी रचना प्रारम्भ हुई। बारह चौपाइयोंके बाद एक दोहा और सोरठेका क्रम रखा गया है। यथा:

संवत् सुभ पुरान (१८) सत जानौ, तापर और नछत्रन (२७) आनौ।
माघ सुमास पच्छ उजियारा, तिथि पंचमी सुभग ससिवारा।
श्रीबसंत-उत्सव दिन जानी, सकल विस्वमन आनंदरानी।
मनमें करि आनंद हुलासा, 'व्रजविलास'को करौं प्रकासा।

× × ×

द्वादस चौपाई प्रति दोहा, तहँ पुनि एक सोरठा सोहा।
कहूँ कहूँ सुभ छंद सोहाये, भाषा सरल न अर्थ दुराये।

१०,००० श्लोकोंके व्रजविलास-काव्यको पढ़नेके लिए काफी समय चाहिए और वह सबके लिए सुलभ नहीं होता। इसलिए इसके सारांशके रूपमें श्री गोवर्धनदासने 'व्रजविलास-सारावली'की रचना की, जिसका उल्लेख किसी खोज-विवरण या हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें नहीं हो पाया। अतः कृष्णचरित-सम्बन्धी इस महान् ग्रन्थका परिचय इस लेखमें दिया जा रहा है।

कुछ वर्ष पूर्व अपने 'अभय जैन-ग्रन्थालय'के लिए पंजाबकी जो हस्तलिखित प्रतियाँ मैंने खरीदीं, उनमें एक प्रति 'व्रजविलास-सारावली'की संवत् १८३५की लिखित प्राप्त हुई। प्राप्त प्रति ९० पत्रोंकी हैं। प्रारम्भमें 'व्रजविलास सारावली'का सूचापत्र पाँच पृष्ठोंमें लिखा है। प्रति सजिल्द है। 'व्रजविलास-सारावली'की समाप्तिके बाद अन्तिम पत्रमें 'कवित्त कृष्णाबाईको' लिखा हुआ है। इस सारावलीमें ११६३ दोहे हैं।

प्रारम्भ और अन्तके पद्योंसे इसके रचयिताका नाम गोवर्धनदास सिद्ध है प्रारम्भके नवें दोहेमें कविने अपनी जाति ढूसर, पिताका नाम ईश्वरसिंह और निवासस्थान 'सोथड़ गाँव'का उल्लेख किया है। सारावलीमें रचना-कालका उल्लेख नहीं किया; पर मुझे प्राप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रति संवत् १९३५ के भाद्रमासमें कानपुरके नये चौकमें लिखी गयी है। इससे ग्रन्थका रचनाकाल संवत् १९०० के आसपासका मालूम देता है। या सम्भव है, यह १९३५ के आसपासकी ही हो।

अब 'व्रजविलास-सारावली'के आदि-अन्तके पद्य दिये जा रहे हैं। प्रारम्भिक भाग इस प्रकार है—

अथ श्री व्रजविलास-सारावली लिख्यते—

जै जै श्री वल्लभ प्रभू, जै जै श्री नंदलाल।
जै जै श्री रुकमणिरमण, विठ्ठलनाथ दयाल ॥ १ ॥
जै जै श्री रविनंदनी, सकल सुखनकी रास।
दीनदयाल कृपाल चित, निजजन पूरण आस ॥ २ ॥
वंदौं चरण सरोज रज, महिमा सुखद अनंत।
सदा कृपाल कृपाल चित, जे जन हरिके संत ॥ ३ ॥
श्री 'व्रजवासीदास' जू, मोतन होहु दयाल।
मनबांछित पुरवहु सकल, बानी प्रकट रसाल ॥ ४ ॥
'व्रज बिलास' व्रजराजकौ, सकल सारको सार।
ललित काव्य तुम कृत बिदित, कथा अमित विस्तार ॥ ५ ॥
रचूं ग्रंथ 'सारावली' व्रजविलासको सार।
सुंदर जस गोपालको, भक्तन प्राण आधार ॥ ६ ॥
जे हरिजन याहि देखिहैं, वंदौं सीस नवाय।
और दोष नहिं मन धरैं, पठन करैं चित लाय ॥ ७ ॥
हरिजन गाहिक गुननके, सोगुन हरि गुनगान।
हरिगुन - रहित बखानिये, सबई औगुन खान ॥ ८ ॥
'दूसर' वंश जनम लियो, भयो गोबरधनदास।
पुत्र ईस्वरीसिंघको, गाँव भोथड़े वास ॥ ९ ॥

अन्तिम भाग इस प्रकार है :

व्रजविलास व्रजराजको, कहि किन पायो पार।
भक्तिभाव हरिजननकौ, सरस भजन सुखसार ॥ ११५७ ॥
मन अनंद हुलसत हियो, भई पूर यह आस।
'व्रजबिलास - सारावली', कृत गोबरधनदास ॥ ११५८ ॥
पढ़ी न विद्या काव्यकी, लख्यो न कोऊ ग्रंथ।
सुमिरन हरि हरिजननको, पायो सूधो पंथ ॥ ११५९ ॥
बलिहारी हरिजननकी, जिनके नाम प्रताप।
गायो जस व्रजरायको, सुखद हरन संताप ॥ ११६० ॥
हरिजन हरि दोउ एक ही, सदा दीन हितकार।
सेत सहार पपील जिमि, लंघ्यो सिंधुके पार ॥ ११६१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्तिभाव बानी विमल, सुनैं सदा हरिदास।
गावैं श्रीगोपाल-गुन, नख सिख सुखकी रास ॥ ११६२ ॥
भूलचूक जो लखि परे, लैंहे आप सुधार।
सुमिर कृष्णके नामकूँ, बिनवत बारंबार ॥ ११६३ ॥

११९३ इति श्रीब्रजविलास-सारावली सम्पूर्णम्। मिती पूष वदी ७ संवत् १९३५। प्रारम्भमें 'कानपुर स्थान, नया चौक, भादूँ मास संवत् १९३५ लिखा है।

अन्तिम पृष्ठपर लिखित कवित्त-दोहा इस प्रकार है :

॥ कवित्त कृष्णाबाईको ॥

तीन वर्ष चार मास किनो भूतल निवास,
बालकेस रसविलास मोहे नर-नारी है।
निपट ही दुलारी घरमेंस बहिनकी प्यारी,
सूरत मोहनी सँवरिया पालपोषण सुखसारी है
राख्यो मन मेल कृष्णलीला सुखरासकेल,
खेलत सो खेल सूरत पाछली सम्हारी है
औचकि तन डारी वा छिन दिव्यरूप भारी है,
हँसिके गोवर्द्धन प्यारी कृष्णा कृष्ण पे सिधारी हैं।

॥ दोहा ॥

कृष्ण प्यारी कृष्णकी, सदा कृष्णके पास।
गोबर्द्धन वल्लभ सरण, नित आनँद हुलास ॥

फागुन सुदी ३ संवत् १९३५ भगवदसरन भई—ऐतिहासिक दृष्टिसे कृष्णाबाईके स्वर्गवाससूचक उपर्युक्त पद्य महत्त्वके हैं। इनके अनुसार अचानक ही उनका स्वर्गवास १९३५ की फाल्गुन सुदी तीजको हुआ था। घरमें वे सबको प्यारी थी व कृष्णकी भक्त थी ही।

उक्त कृष्णाबाई कहाँकी और कौन थी ? यह निश्चित रूपसे बताना कठिन है, पर ग्रन्थके प्रथम पत्रके अनुसार यह प्रति कानपुरमें लिखी गयी, अतः सम्भव है, कृष्णाबाई कानपुरकी हो और ग्रन्थका अन्तिम पत्र संवत् १९३५की फाल्गुन सुदि तीजके करीब पूर्ण हुआ। तब यह कवित्त और दोहा लिख दिया गया।

०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्याग : एक विचारोत्तेजक ललित निबन्ध

श्री कृष्णमुनि प्रभाकर

★

मृत्तिका-खण्ड उठाकर वे गंगा-तटपर हस्तमार्जनके उद्देश्यसे बैठे। दाहिने हाथपर मृत्तिका-खण्ड रखकर बाँयें हाथकी चुल्लीसे उसपर जल डाला। वह तत्काल पिघल गया। वे गम्भीरतापूर्वक शान्त हृदयसे इकटक पिघलते उस मृत्तिका-खण्डको देखते रहे। विचार-प्रवाह चला। कुछ काल पूर्व सुने सर्वज्ञ श्रीचक्रधर स्वामीके उपदेशकी एक-एक ध्वनि कानोंमें गूँज उठी। सोचा—इस नश्वर देहका सदुपयोग शीघ्र ही होना चाहिए। नहीं तो यह इस मिट्टीके ढेलेके सदृश पिघलकर नष्ट हो जायगी। अनित्य शरीरका भरोसा भी क्या ? कहा भी है :

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

निश्चय किया : एक वर्षतक घर-परिवारका सम्पूर्ण प्रवन्ध करके अवश्यमेव सर्वज्ञकी शरण चला जाऊंगा। उसीमें मेरा कल्याण सन्निहित है।

बुद्धिने तत्काल सचेत किया : इसी दीर्घ अवधिके मध्य ही अगर तुम इस अनित्य संसारसे चल बसे, तो…?

प्रश्न विचारणीय था। गम्भीरतापूर्वक विचारा और निर्णय किया : अच्छा, तो छह मासतक परिवारका सम्पूर्ण प्रबन्ध करके स्वामीकी शरण चला जाऊँगा। मँझधारमें परिवार-वालोंकी नावको छोड़ जाना भी तो कोई बुद्धिमत्ता नहीं ! नैतिक और व्यावहारिक दृष्टिसे भी तो उन्हें इस प्रकार अधरमें त्याग देना ठीक नहीं कहा जा सकता।

बुद्धिने पुनः टोका। अरे, इस दीर्घ अवधिके मध्य भी तो तुम इस नश्वर संसारसे उठ सकते हो ! और फिर, जब तुम्हें सम्बन्धियोंसे पृथक् होकर ही आत्मकल्याण करना है, तो उनकी चिन्ता कैसी ? इस तरह तो तुम फिर उनकी ममताके कठोर पाशमें फँस जाओगे। निकलना मुश्किल हो जायगा फिर दुबारा। जब तुम्हारे अन्तर्मनमें वैराग्यकी भावना उदय हो रही है, तो उसे व्यर्थमें क्यों शान्त करनेकी चेष्टा करते हो ?

युक्ति ठीक थी। पुनः विचारकर निश्चय करना पड़ा। परन्तु बुद्धि प्रत्येक निश्चयको अपनी प्रबल युक्तियों द्वारा काटती गयी, सचेत करती गयी। इसी तरह विवाद चलता रहा। वे छहसे तीन, तीनसे दो और दोसे एक मास तक आये। सांसारिक मोह क्रमशः दूर होता गया, पर पूर्णतः उसके ममत्व-बन्धनका साया उनके चित्तसे नहीं हटा।

आखिर बात सप्ताहसे एक दिनतक आकर रुक गयी। किन्तु प्रवीण बुद्धिने पराजय नहीं स्वीकार की। उसने पुनः युक्ति दी और चेताया : अरे, तुम एक दिनकी बात करते हो ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस अशाश्वत संसारमें तो क्षणभरका भी भरोसा नहीं ! एक दिनके मध्य भी तो तुम्हारा देहावसान हो सकता है। दियेको बुझते कहीं देर लगती है ? मृत्युका एक हलका झोंका ही उसके लिए काफी है। और फिर, बार-बार तुम सम्बन्धियोंकी चिन्ताका पल्ला क्यों पकड़ते हो ? क्या तुम्हारे अन्दर आत्मोद्धारकी ललक अभी पूर्णरूपसे नहीं उठ पायी ? पलभरके लिए मान लो कि यदि कहीं और इसी वक्त तुम्हारा शरीर छूट जाता है, तो तुम्हारे परिवार-वाले क्या तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकेंगे ? उनका लालन-पालन नहीं हो सकेगा ? इसीलिए कहती हूँ, व्यर्थके पचड़ेमें मत पड़ो। सबकी किस्मत अपने साथ है। जो जन्मा है, अपनी किस्मत साथ लेकर जन्मा है। किसीका मुकद्दर कोई नहीं छीन सकता और न बना ही सकता है। देखो, विलम्ब मत करो।

चेतना युक्तियुक्त थी, व्यर्थ न गयी। उसने हृदय वेध दिया। किन्तु मोह अभी भी पूर्णरूपेण दूर नहीं हुआ था। विचार किया : ठीक ही तो है। अब विलम्ब किसलिए और क्यों ? चाभियाँ परिवारवालोंको सौंप और उनसे अन्तिम भेंटकर सीधा प्रभुकी शरण चला जाऊँगा।

बुद्धि उन्हें फिर फिसलते देख कुछ स्तम्भित-सी रह गयी। क्रोधकी हल्की-सी लहर उठी और विलीन हो गयी। स्वरको संयत करके बड़ी गम्भीरतासे वह बोली : किये-करायेपर व्यर्थ ही पानी क्यों डालते हो ? अगर तुम्हें त्याग ही करना है, तो चाभियोंसे मोह कैसा और परिवारवालोंसे मिलनेकी कामना क्यों ? इसे तो त्याग नहीं कहते। शुभकार्यमें विलम्ब मत करो। आप्तोंसे मिलने जाओगे, तो क्या वे तुम्हें सहज ही छोड़ देंगे ? तनिक विचार तो करो। वहाँ जाकर तो तुम मोहमें फँस जाओगे और फिर किसी भी हालतमें निकल न सकोगे।

इसबार उन्होंने कोई आनाकानी नहीं की। वे उठकर दूरवर्ती श्रीप्रभुके आश्रमकी ओर चल दिये और चाभियाँ समीपके एक अन्धे कुएँमें विसर्जित कर दीं।

कथा-तत्त्वके सन्दर्भमें मेरे धर्मशास्त्रका कथन है कि वास्तविक त्यागकी भावना जब साधकके अन्तर्हृदयमें जाग्रत् हो उठती है, तब उसके समक्ष सांसारिक क्रिया-कलापों और अशाश्वतिक वस्तुओंका कोई मूल्य नहीं रह जाता। वह पुनः माया-मोहके कठोर बन्धनमें भी कभी नहीं फँसता और अनवरत परम-सत्ताकी ओर अग्रसर होने लगता है।

साधक मन है और उसे चिरन्तन ज्ञान प्रदान करनेवाली बुद्धि गुरु है, जो पद-पदपर उसका वास्तविक ज्ञान-द्वारा मार्ग प्रदर्शित करती रहती है। मन स्वाभाविक ही चंचल और चपल है, किन्तु चतुर बुद्धि उसकी अस्थिर-वृत्तियोंको ज्ञानके अंकुश-द्वारा सदैव संयत करनेके लिए सचेष्ट रहती है। सांसारिक ममत्वको एक-एक करके त्याग देनेकी भावना मल-त्यागके सदृश होती है। उस अवस्थामें साधक पुनः सांसारिक अनित्य वस्तुओंकी ओर प्रवृत्त नहीं होता और न उसके चित्तमें कभी उनके प्रति मोहासक्ति ही उत्पन्न होती है। इस प्रकार विरक्तिपूर्वक किया गया त्याग ही अन्ततक निभ पाता है, मध्यमें उसके खण्डित होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नये राष्ट्रका अभिनन्दन

लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'

★

अग्नि-परीक्षामें उतरा है देशप्रेमका यह कुन्दन,
प्राचीमें उदयाचल करता नये राष्ट्रका अभिनंदन!

दिग्दिगंतमें फैल चली यह मंगल-प्रभा निराली है,
दूर क्षितिजकी काली रेखाके कपोलपर लाली है,
अन्धकारकी सेनाके गिर गये शस्त्र दायें-बायें,
मुक्तिवाहिनीके सैनिक फहराते स्वर्ण - पताकाएँ,
बांध रहीं किरणोंकी परियां रक्त-कमलके बंदनवार,
किसके उज्ज्वल दिव्य भालपर चमक रहा लोहित चंदन ?

भारत था चाहता कि क्यों इसमें अपनेको उलझाएँ ?
मिलकर दोनों भाग परस्परकी गुत्थीको सुलझाएँ,
हम तो थे खामोश, हमें संग्राम व्यर्थ कब भाया था,
किन्तु छेड़कर नीच पाकने सोता सिंह जगाया था,
उस मुजीबको बन्द कर लिया उसने काराके अन्दर,
सारा बंगला देश प्रणत था करनेको जिसका वन्दन।

मानवतासे हीन बढ़ चली जब सेना पाकिस्तानी,
बेजबान मासूमोंतक पर कहर ढा चली शैतानी,
दौड़ पड़ी बे-वक्त कयामत गांव-नगर वीरान हुए,
महानाश यह देख विश्वके सभी देश हैरान हुए,
बनी कालका काल बढ़ी तब मुक्तिसैनिकोंकी टोली,
जीवन था चल पड़ा झेलने महामृत्युका आलिंगन।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आजादीके अभिलाषी जन संगीनोंके दास हुए,
लक्ष-लक्ष जन जहाँ अचानक क्रूर कालके ग्रास हुए,
एक कोटि जन आये प्राण बचा अपनी कृशकायामें,
शरणागत-वत्सल भारत-जननीकी अंचल-छायामें,
धरा शान्त थी, मौन गगन था, चेतनता थी मूर्छित, किन्तु,
मानवताकी मूर्ति इन्दिरा सह न सकी मानव-क्रन्दन।

हम हैं शांत, किन्तु यदि कोई बढ़कर हमको ललकारे,
और हमारी सीमामें आकर शस्त्रोंको झंकारे,
वायुयानसे बम बरसाये निरपराध आबादीपर,
आने लगे आंच जब अपनी तपःप्राप्त आजादीपर,
स्वाभिमानका आराधक भारत तब कैसे मौन रहे!
इसीलिए स्वीकारा हमने समरभूमिका आमन्त्रण।

जकड़न इतनी बढ़ी कि बन्धन एक-एक कर टूट चले,
दुखकी महावृष्टिसे कसमस सुखके अंकुर फूट चले,
आँसूकी धारामें अरिके शापित बेड़े डूब गये,
हेमन्ती-लक्ष्मीने थे संदेश सुनाये नये-नये,
वीरवरोंकी सहनशक्तिके बन्ध बिखर शत खंड हुए,
हरहर करता नव दिनमणिका चला अरोक विजय-स्यंदन।

जनताकी हुंकार सुने साम्राज्य धूलमें मिल जाते,
ब्रह्मासे भी प्राप्त शस्त्र तब कोई काम नहीं आते,
नारीका अपमान मृत्युका आमन्त्रण दे देता है,
रावण औ दुर्योधन-जैसोंके सिर वह चुन लेता है,
होता है बलिदान अमर, भरता न कभी वह इसीलिए,
सत्य प्रतिष्ठित हुआ धरापर आज उतार स्वप्न-बन्धन।

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक मीठी चुटकी

सन्तति निरोध बनाम पूतना-योजना

श्री बाबाजी

सन्तति-निरोध-योजनाकी जन्मभूमि अमेरिका है। वहाँ 'मार्गरेट सेंगर और 'मेरीस्टोप्स' नामक दो महिलाओंने एक नारा दिया। वह था बच्चोंको जन्म देनेमें नारी-स्वातन्त्र्यका। कामाचारको यह स्वेच्छाचारिता ही इस योजनाकी आधार-भूमि है।

यह स्वेच्छाचारिणी योजना वायुयानोंसे उड़कर आनन-फाननमें भारत पहुँची। अपनी चकाचौंध, आडम्बर और परिष्कृत प्रलोभनका स्वरूप उसने यहाँ आकर प्रदर्शित किया। उससे मन्त्री, अधिकारी, खाद्यसमस्या सुलझानेमें लगे विद्वान्, किसान, मजदूर तथा मालिक, सभी आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सके। किन्तु यह स्वैरिणी अभीतक अपनी प्रक्रियासे बहुत कम लोगोंका वरण कर सकी। वस्तुतः इस माधुर्यवेष्टित वटीकी गन्ध दूरसे ही आ जाती है।

इस प्रसंगमें श्रीमद्भागवतका पूतना-वध-प्रकरण स्मरण हो आता है। नन्दबाबाके घरमें श्रीकृष्ण सो रहे हैं। वे नन्हे-मुन्ने हैं, नन्दके आनन्द हैं। नन्द आनन्दरूप हैं और प्रत्येक गृहस्थ नन्दरूप। उसका कर्म कृष्ण (कर्षण—खेती) है। प्रत्येक कर्षक किसान है।

इनका कंसके राज्यमें निवास है। श्रीकृष्ण आठवीं सन्तान हैं। कंसको भावी बच्चोंसे भय है। अहिंसक राज्योंको तो इस प्रकारकी आशंका होती नहीं, किन्तु कंस तो हिंस्र है। वह बच्चोंपर नियन्त्रण पानेके लिए आकुल है। उसके अपने राज्य-संरक्षणके बहुतसे उपाय विफल हो चुके। वह शत्रुओंको गुड़ देकर समाप्त करनेके आयासमें निरन्तर लगा है, ताकि तलवार न चलानी पड़े। अन्ततः उसने एक योजना बनायी, जिसका संचालन सौंपा गया 'पूतना' पर। उसकी नियुक्ति इसलिए हुई कि व्रजमें बच्चे न बचें, सब मारे जायँ। पूतनाका अर्थ ही है 'पूत+ना'—पुत्र रहने ही न पाये। बच्चे निष्कलंक, पवित्र होते हैं। उन पूतात्माओंको जो न रहने दे, उसका नाम है पूतना! फिर जो जन्म लेने ही न दे, उसे क्या कहेंगे, यह तो आप ही निर्णय करें।

हाँ, तो वह पूतना राजाद्वारा नियुक्त थी। अपनी ड्यूटीकी पक्की, क्रूरस्वभावा नारी। सरकारकी आज्ञासे वह गयी। गयी नगरमें, गाँवोंमें और अहीरोंकी छोटी-छोटी बस्तियोंमें। वह बहुत बड़ी शक्तिसे सुसज्जित थी। उसके साथ कंसका नियोजन था। वह आकाश-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मार्गसे उड़ सकती थी। अपनेको कहीं गुप्त तो कहीं प्रकट कर सकती थी। नये-नये विविध रूपोंको धारण करनेमें समर्थ थी। हेल्थ-विजिटर और ग्रामसेविकाओंसे भी अधिक लोगोंमें हिलमिल गयी थी। उसके सामने महिला-मङ्गल तथा समाज-कल्याणके सभी कर्मचारी अनुत्तीर्ण घोषित किये जा सकते थे।

वह रहती थी बड़े ठाटबाटसे। उसके बालोंकी कटिंग—अलकावली सिनेमाकी अधिकांश नायिकाओंको मात दे रही थीं। बहुत ही मनोहर थी। सुगन्धित पदार्थोंका प्रलेपन (स्नो, पाउडर, सेन्ट, लिपिस्टिक), सुन्दर समृद्ध वस्त्राभूषणोंका तो क्या पूछना ? शारीरिक प्राकृतिक बनावट भी उसकी उस दिन निखर आयी, जिस दिन वह नन्दबाबाके घर पहुँची। मधुर मुसकान, कटाक्ष-पूर्ण चितवन, आकर्षक हावभाव। इस प्रकार वह वामा व्रजवासियोंका चित्त चुरानेमें समर्थ थी।

कृष्ण दुष्टोंके काल हैं। उनका स्वरूप कभी-कभी प्रकट होता है। उस समय वे राखमें ढँकी अग्निकी तरह थे। पूतना उनके महत्त्वको जानती नहीं। कृष्णने भी उसे देरमें जाना। जान भी लिया तो आँखें बन्द किये रहे। यशोदा, रोहिणी वहाँ मौजूद थीं। वे भी चुपचाप खड़ी एकटक उसे ठगी-सी देखती रहीं। उन्होंने समझा विरहिणी लक्ष्मी जैसे अपने पतिसे मिलने आयी हो। आज भी अपने घरोंमें आयी सेविका और ग्रामलक्ष्मियोंके चाकचिक्यसे यशस्विनी (यशोदा) प्रगतिशीला (रोहिणी) महिलाएँ प्रभावित हुए विना नहीं रहतीं।

उसने श्रीकृष्णको गोदमें उठा लिया। अपने स्तन उनके मुँहमें दे दिये, जिसमें पहलेसे हालाहल विष लगा था। उस विषको तो कृष्णके क्रोधने पी लिया। कृष्णने तो दूध ही पिया और ऐसा पिया कि उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। राक्षस रूप प्रकट हो गया। मुँह फट गया। बाल बिखर गये। प्राण निकल गये। श्रीकृष्ण छाती पर निर्भय खेल रहे है।

हम भी अपनेको पूतनाके हाथोंमें सौंप रहे हैं। देशकल्याणके लिए, रोजी-रोटीके लिए, आबादी कम करनेके लिए, सुखी और समृद्ध परिवारके लिए। किन्तु एक दिन पूतनाका अन्त होकर रहेगा।

उन्होंने पूतनाको आया हुआ जानकर आँखें बन्द कर लीं। इन योजनाओंके लागू होने-पर जनता-जनार्दनने भी आंखें बन्द कर ली हैं। सन्दर्भमें श्रीवल्लभाचार्यजीने बहुत-सी उत्प्रेक्षाएँ की हैं। तदनुसार विचार करनेपर यहाँ भी इस मौनमें बहुतसे हेतु दीखते हैं।

—आचार्यने कहा : पूतना अविद्या है। तो सन्तति-निरोध सचमुच मूर्खता है ?

—पूतना बालघातिनी थी, क्या यह योजना भी वैसी है ? सम्भव है—गांधी, नेहरू, तिलक, रवीन्द्र-जैसी पवित्रात्माएँ उन बीजाणुओंमें आनेवाली हों, जिसके लिए यह योजना पूतान् अपि नयति है।

क्या हम इसलिए मौन हैं कि परिवार-नियोजन देशके लिए पहला प्रयोग है। इसके पूर्व तो 'बह्वः सन्तु पुत्राः, बहु देयं चास्तु' की कामना करते थे। 'ब्रह्मवर्चसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जायतामा राष्ट्रे महारथो जायताम्, यजमानस्य वीरो जायताम्' का उद्घोष करते थे। किन्तु अब सोचते हैं कि जैसे भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि 'मैंने पापिनीका दूध नहीं पिया है; जैसे लोग आंखें बन्द करके चिरायतेका काढा पी लेते हैं, वैसे ही पी जाऊँ। बहुत-से कानून कायदे, रद्दोबदल, आँधी-तूफान आते रहते हैं। उसी प्रकार यह योजना आयी है—सब झेलते हैं, इसे भी झेल लेंगें। भारतपर बहुतसे विधर्मी शासन-साम्राज्य, साम्प्रदायिक आक्रमण आये, सबको हमने पचा लिया, या वे हममें अस्तंगत हो गये। इसी प्रकार यह भी एक बयार आयी है, जो चली जायगी। आंधी बैठकर गवां लेनेकी परम्परा तो बहुत दिनोंसे है।

—अभीतक तो इससे कुछ हानि नहीं हुई, सिनेमाका शो देखनेमें पैसा, समय दोनों खर्च करते हैं, इस योजनामें तो बसोंके पीछे स्टेशनोंपर, चौराहोंपर बड़े-बड़े चित्रोंमें 'एक-दो-तीन···बस !' चित्रपट देखनेको मिलते हैं। वे भी मुफ्त, बिना समय खर्च किये।

—भगवान्‌के उदरमें निवास करनेवाले जीव असंख्यकोटि ब्रह्माण्डोंमें कहीं न कहीं जन्म पा ही जायेंगे।

सबके जन्म, कर्म, संस्कार पृथक्-पृथक् होते हैं, जिनको इस पवित्र भारतभूमिपर अन्नदाना नहीं लिखा होगा, उनके जन्म-निरोधके लिए यह योजना सहायक हो होगी।

—सत्पुरुषोंका स्वभाव ही होता है कि वे दुर्गुणों—दोषोंमें भी कुछ अच्छाई देखने-ढूंढ़नेका प्रयास करते हैं।

—इस देशमें भ्रूणहत्या, गर्भपातकी घटनाएँ तो अनेक बार होती ही रहती हैं, अब इसे सरकारी संरक्षण प्राप्त हो गया, तो मौज-भोग-आनन्दका एक मार्ग प्रशस्त हो जायगा। अनेकोंका कल्याण होगा।

—काम-भोगके बारेमें पहलेसे ही लोग मौन रहते आये हैं। इसलिए कि इसकी चर्चा करनेमें भी पाप है।

—योगसे बड़े-बड़े अनिष्ट निवृत्त हो जाते हैं। सम्भव है जनता योगदृष्टि सम्पादित कर रही हो।

—यह परिवार-नियोजना शिशुओंकी संख्या कम करने आयी है। जैसे उस पूतनाको कृष्णकी कृपासे शिशु दिखायी ही नहीं पड़े, सम्भव है वैसे ही यहांके दम्पती इस योजनाके शिकार हो न हों। पूतना मारी जाय और अपना दूध—सम्पत्ति, लावण्य छोड़कर इसे अपनी अमरावती पुरीको वापस जाना पड़े। फिर भी सावधानीके लिए एक-दो संकेत पर्याप्त होंगे।

पुरीके जगद्गुरु शंकराचार्यने उद्बोधन दिया है कि हिन्दू सन्तति-निरोध न करें। अपनी संख्या बढ़ायें, नहीं तो विधर्मियोंकी दिन-दुनी रात-चौगुनी, संख्या बढ़ रही है। वहाँ भारतका हिन्दू शून्य हो जायगा। इस योजनाके पूर्वकालमें भी तो बहुत-से उपाय किये गये।

—ब्रह्मचारियोंने जीवनके चतुर्थांश, आरम्भिक समयमें ब्रह्मचर्यको सन्तति-निरोधका सर्वोत्तम साधन निरूपित किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीराधाका दार्शनिक रूपमें उपस्थापन

डा० केशवदेव शर्मा, वेदान्ताचार्य, एम० ए०, पी० एच० डी०

☆

राधाको दार्शनिक रूपमें उपस्थित करनेका कार्य सर्वप्रथम आचार्य निम्बार्क (१२वीं शताब्दी) का ही प्रतीत होता है। ब्रह्मवैवर्तपुराणकारने तो राधाकी स्थापना उसके समग्र रूपमें कर दी है। वंगीय वैष्णव-भक्तोंपर भी इस पुराणकी राधा-कृष्ण-सम्बन्धी पूजाका सर्वप्रथम प्रभाव पड़ा। प्रस्तुत पुराणने भक्तिका रूप ही बदल दिया। वंगीय वैष्णव धर्मको इसने माधुर्यमय बना दिया और समस्त बंगाल राधा-कृष्णकी केलि-कल्लोलोंमें अवगाहन करने लगा। जयदेवने इसी वैष्णव-धर्मका अवलम्बन कर 'गीत-गोविन्द'की रचना की। उनका यह कथन कि—

—वानप्रस्थियोंने जीवनके तृतीय चरणको सन्तति-निरोधके लिए उपयुक्त पाया।

—संन्यासियोंने जीवनके चतुर्थ पादमें घर-गृहस्थीका ही परित्याग कर दिया।

—धर्मशास्त्रने बहुत-से पर्व, उत्सव, तिथि-नक्षत्रों और दिनोंमें ब्रह्मचर्यके पालनकी विधि दी। पुण्यका लोभ दिया।

—कामशास्त्रने भोगके प्रकार और दिनोंका निर्धारण किया।

—आयुर्वेदने रोगोंका भय दिखलाकर भोगसे बिरत किया।

—वर्ण, जाति और धर्मने अपने-अपने नियन्त्रण लगाये।

—समाजने समय, स्थान और पात्र निश्चित किये तथा नैतिक मान्यताएँ दीं जिन्हें सरकारोंने संरक्षण दिया। फिर भी आबादी बढ़ती गयी, बढ़ती गयी। रुकी नहीं; क्योंकि सृष्टिके मूलपुरुषने नारा जो दिया था : एकोऽहं बहु स्याम्।

अब सरकारने सन्तति-निरोध-योजना चालू की है—ऊपरकी सभी बातोंको तिलाञ्जलि देकर, भोगकी छूट देकर। किन्तु आचार्य विनोबा भावेने एक बहुत सुन्दर व्यावहारिक सूझ-बूझ दी है, जरा आप भी एकान्तमें बैठकर विचार करें।

उनका कथन है कि "पाश्चात्य पूँजीपति देशोंका एक बृहत् षड्यन्त्र है—परिवार-नियोजन। उन्हें भय है कि पूर्वी देशोंकी एशियाकी बढ़ती हुई आबादी एक दिन सारे विश्वपर छा जायगी और साम्यवादी विस्तारसे वे राष्ट्र संत्रस्त हो जायँगे। फलस्वरूप सन्तति-निरोधका आयोजन हुआ।"

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं भज तदा जयदेवसरस्वतीम्॥

स्पष्ट करता है कि उनके गीत हरिस्मरणके लिए रचे गये थे, न कि काव्यानन्दके लिए। अतएव सिद्ध है कि श्रीराधाका भक्ति-क्षेत्रमें जयदेवके समयमें बहुत अधिक महत्त्व था। गीत-गोविन्दके पश्चात् बंगला, बिहारी, हिन्दी आदि भाषाओंमें इस प्रकारकी रचनाओंकी बाढ़-सी आ गयी। महात्मा चैतन्यदेवने धर्मकी इसी पावन धाराका आश्रय लेकर मधुर-रसपूर्ण रागानुगा भक्तिका प्रचार किया।

इस धर्मका मूल बीज सांख्यशास्त्रके पुरुष प्रकृतिवादमें था, जो शिव-भक्तिके रूपमें तन्त्रमतमें स्वीकृत हुआ। बौद्धधर्मकी वज्रयान-शाखाका साधना-पथ भी इसी तन्त्रमतकी शक्तिको ध्येय मानकर अग्रसर हुआ। शक्तिवादने साधारण जनताको अधिक आकृष्ट किया।

अतएव ज्ञात होता है कि इस वैष्णव धर्मकी राधा मूलरूपमें सांख्यकी प्रकृति ही है। जैसा कि ब्रह्मवैवर्तकार कृष्ण-जन्म खण्ड (५०.६६) में कहते है :

ममार्धांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी।

श्रीकृष्ण स्पष्ट रूपसे राधाको अपना अर्धांश और मूल-प्रकृति कहते हैं। आगे कहते हैं कि 'कृष्ण और राधा दोनोमें कोई भेद नहीं। जैसे दुग्धमें धवलता, अग्निमें दाहकता या पृथ्वीमें गन्ध है, वैसे ही श्रीकृष्ण अपनी मूल प्रकृति राधामें रहते हैं। जैसे कुम्भकार मिट्टीके बिना घड़ा नहीं बना सकता, स्वर्णकार सोनेके बिना कुण्डल नहीं बना सकता, वैसे ही कृष्ण राधाके बिना सृष्टिकी रचना नहीं कर सकते। राधा सृष्टिका आधार है तो श्रीकृष्ण अनश्वर चैतन्य रूप।'

महात्मा सूरदास भी राधा और कृष्णमें अभेदकी स्थापना करते हुए कहते हैं :

प्रकृति पुरुष एकै करि मानहु बातनि भेद करायो।

तथा

गोपी ग्वाल कहे दुइ नाईं, ये कहुँ नेक न न्यारे।

इस प्रकार ब्रह्मवैवर्तकारने राधाको प्रकृति माना है। विष्णुपुराणकारने श्री को नित्य जगन्माता प्रकृति कहा है। जिस प्रकार ब्रह्मवैवर्तकारने राधा और कृष्णमें कोई भेद नहीं माना, उसी प्रकार विष्णुपुराणकारने भी श्री और विष्णुमें। जिस प्रकारका सम्बन्ध अर्थ और वाणीमें, धर्म और क्रियामें, काम और इच्छामें, तथा यज्ञ और दक्षिणामें होता है, वही सम्बन्ध विष्णु और श्री में है। ब्रह्मवैवर्तकार सांख्यके प्रकृति-पुरुषवादका इस प्रकार कथन करते हैं :

यथा त्वं च तथाऽहं च समौ प्रकृतिपूरुषौ।
न हि सृष्टिर्भवेद् देवि द्वयोरेकतरं विना।

(श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, ७।८१)

जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष दोनोंके संयोगसे सृष्टि-रचना होती है अर्थात् जैसे पंगु-अन्धन्यायसे एक दूसरेके पूरक बन जाते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मवैवर्तमें राधा और कृष्णको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परस्परका पूरक कहा गया है। दोनोंमेंसे एकके बिना सृष्टि-रचना सम्भव नहीं। सांख्यको प्रकृति और पुरुष भिन्न-भिन्न हैं, पर शक्तिवादमें शिव और शक्ति, आत्मा और आत्माकी प्रकृति भिन्न-भिन्न नहीं मानी जाती। ब्रह्मवैवर्तकारने इन दोनों मतोंका सामंजस्य कर दिया है। राधा और कृष्ण उसके मतानुसार भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं।

ब्रह्मवैवर्तकार 'राधा' शब्दकी व्युत्पत्ति करते हुए कहते हैं :

> रासे सम्भूय गोलोके सा दधाव हरेः पुरः।
> तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम॥

(ब्रह्मखण्ड ५.२६)

'रास'से 'रा' तथा 'धाव्' धातुसे 'धा' अर्थात् 'धावन करना'को लेकर 'राधा' शब्दका निर्माण हुआ है। आगे वहीं (१७.२२३ में) कहा है :

'रा'को दानवाचक तथा 'धा'को निर्वाणवाचक मानने पर 'राधा' निर्वाणप्रदात्री-कही गयी है।

पुनः आगे कहते हैं कि 'रकारका उच्चारण कोटि जन्मके अन्धेपन तथा शुभाशुभ कर्म आदिकी दशाको परिवर्तित कर देता है। आकार गर्भवास, मृत्यु तथा रोगोंको दूर करता है। धकार आयुकी हानिसे बचाता है और आकार भवबन्धनसे मुक्ति प्रदान करता है।'

इन वर्णनोंसे यह धारणा होती है कि इस युगमें राधाको ही सर्वशक्तिमती मानकर पूजा-उपासनका क्रम प्रचलित था।

राधाकी उत्पत्ति-कथामें लिखा है कि गोलोकमें रासपरायण श्रीकृष्णके पार्श्वसे एक कन्या उत्पन्न होकर उनकी पूजामें संलग्न हो गयी। उसकी उत्पत्तिका कोई बाह्य कारण न होनेसे श्रीकृष्णके प्राणसे ही उत्पत्ति मानी गयी और उसे श्रीकृष्णकी प्राणेश्वरी कहा गया। उत्पन्न होते ही राधा षोडशी रूपमें अपने अनिंद्य सौन्दर्यसे समस्त चराचरको मोहने लगी और पुरुष मात्र उसकी ओर आकृष्ट होकर आने लगे। उसके रोमकूपोंमें उसीके समान सौन्दर्यमयी अनन्त गोपिकाएँ उद्भूत हुईं और तभी श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे असंख्य गोप तथा गौएँ उत्पन्न हुईं। यह समस्त उत्पत्ति रासलीलाके समय हुईं। अतः यह दिव्य और नित्य मानी गयी।

गोलोकमें उद्भूत राधा वृन्दावन-धाममें अवतीर्ण हुई। इस सम्बन्धमें भी कहा गया है कि भगवान्की तीन प्रकारकी इच्छाएँ होती हैः (१) सिसृक्षा, (२) युयुत्सा तथा (३) रिरंसा। सिसृक्षाकी पूर्ति तो भगवान्ने 'एकोऽहं बहु स्याम्' द्वारा की। 'युयुत्सा' अपने द्वारपाल जय-विजयके साथ तीन जन्मोंतकके युद्धोंद्वारा सम्पन्न की। रिरंसाके लिये भगवान्ने अपनी प्रधान शक्तिको शाप दिया, तब यह लीला वृन्दावनमें की।

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राष्ट्रगुरु समर्थ रामदास

एक पावन श्रद्धाञ्जलि

[भारत विश्वमें धर्म और अध्यात्म-प्रधान राष्ट्रके रूपमें प्रसिद्ध है। इसका सब कुछ धर्म और अध्यात्म ही है। दोनोंमें एक प्रथमको साधन और द्वितीयको साध्य मानिये या दोनोंको अभिन्न, हैं दोनों एक होकर सृष्टिके सर्जक, पोषक और संहारक कहना न होगा कि इस अर्थमें 'धर्म' कोई तथाकथित संकुचित सम्प्रदाय कभी नहीं। यही कारण है कि महाराज मनु कहते हैं कि 'इस देशके अग्रजन्मासे पृथ्वीके समस्त मानव चरित्रशिक्षा पाये।' कारण, चरित्रशिक्षाकी ठोस नींव धर्म और अध्यात्म इसी मिट्टी-पानीकी देन हैं। आज चरित्रशिक्षाके गीत तो सर्वत्र खूब गाये जाते हैं, पर सारे बिना नींवके ही होते हैं। भारतमें ही उसकी नींव धर्म और अध्यात्म सुलभ है।

यही कारण है कि जब-जब यह देश पतन या ह्रासोन्मुख देखा गया, तब-तब कोई विभूति, अवतार, महापुरुष सन्त-महात्मा आविर्भूत हो इस सुदृढ़ नींव धर्म-अध्यात्मपर छायी राख मिटाकर पुनः इसे चमका देते और अपने सहज प्रकाशसे विश्वका पोषण तथा मंगल किया करते हैं।

इसी कड़ीमें एक समय ऐसा आया जब धर्मके साथ लोक व्यवस्था भी बिगड़ गयी। सर्वत्र विदेशी यवनोंके आक्रमणने भयद्रुतताकी स्थिति खड़ी करा दी। लोगोंमें धर्म भावनाके साथ निर्भयता का और सुरक्षितताका भाव भरना आवश्यक हो गया। वह भी उन आक्रामकोंकी आखें बचाते हुए। अतएव भगवान्की प्रेरणासे राष्ट्रगुरु समर्थ रामदास स्वामीका अवतार हुआ। उन्होंने अपने प्रखर ब्रह्मतेजको सतेज बनाकर उससे शिवराजका क्षात्रतेज आविर्भूत कर दिया और 'इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि' (शाप और शरसे ब्रह्म और क्षात्र तेजसे) विश्वमें धर्म-व्यवस्था-स्थापनमें जुट गया और हिन्दूपद पादशाही स्थापित हो उठी।

समर्थ रामदास स्वामीने तीन सूत्र दिये—प्रथम हरिकथा-निरूपण, दूसरा राजधारण (राजनीति) और तीसरा सावधानता। उन्होंने अपनी इहलीला पूरी कर जाते हुए अपना वाङ्मय रूप 'दासबोध' रख दिया जो आज करोड़ोंका मार्गदर्शन करता है। आगामी फाल्गुन कृष्ण नवमीको उनका महानिर्वाण-दिन पड़ता है। स्वतन्त्र राष्ट्रको आज ऐसे ही महापुरुषकी नितान्त आवश्यकता है। आइये, यहाँ हम उनके चरित्रका विहंगम-दर्शनकर उसीके अनुसार अपना जीवन ढालकर राष्ट्रके उत्थानमें अपनेको सक्षम बनायें। हमारा यह कार्य ही उस राष्ट्रगुरुके प्रति मूर्त पावन श्रद्धाञ्जलि होगी।—अङ्गार]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान् श्री सूर्यनारायणके वरदानसे सूर्याजी पन्तकी धर्मपत्नी राणूबाईके गर्भसे सं० १६६२ मार्गशीर्ष शुक्ल १३ को प्रथम पुत्रका जन्म हुआ, जिसका नाम गङ्गाधर रखा गया, जिसने अपनी वयस्के ९वें वर्षमें ही श्री हनुमानजीके मन्दिर में ग्यारह दिनोंतक मारुतिकवचका पाठ करके श्रीहनुमानजीको प्रसन्न कर लिया और जिसे भगवान् श्री रामचन्द्रजीने भी दर्शन देकर अनुगृहीत किया। ये ही गङ्गाधरजी आगे चलकर 'श्रेष्ठ' या 'स्वामी रामदास'के नामसे प्रसिद्ध हुए। इनके जन्मके तीन वर्ष बाद वर्तमान दक्षिण हैदराबादके अन्तर्गत औरङ्गाबाद जिलेमें जाम्बग्राममें संवत् १६६५ की चैत्र शुक्ल नवमीके दिन ठीक श्री रामजन्मके समय राणूबाईने उस महापुरुषको जन्म दिया, जिसे संसार समर्थ गुरु रामदास स्वामीके नामसे जानता है। इनका नाम पिताने नारायण रक्खा था।

नारायण जब पाँच वर्षके थे, तब उनका उपनयन संस्कार हुआ। बचपनमें ये बड़े ऊधमी थे। पेड़ोंपर चढ़ना, एक डालसे दूसरी डालपर या एक पेड़से दूसरे पेड़पर कूदना, पहाड़ोंपर तेजीसे चढ़ना-उतरना, उछलना-कूदना-फाँदना—ये ही सब इनके खेल थे। पांचवें वर्षमें इनका उपनयन संस्कार हो गया था। लिखना, पढ़ना और हिसाब लगाना तथा नित्यका ब्रह्मकर्म भी इन्होंने जल्द सीख लिया। सूर्यदेवको ये नित्य दो हजार नमस्कार किया करते थे। आठ वर्षकी अवस्थामें ही इन्होंने श्री हनुमानजीको प्रसन्न किया और श्री रामचन्द्रजीके दर्शन प्राप्त किये। भगवान् श्री रामचन्द्रजीने स्वयं इन्हें दीक्षा दी और उनका नाम रामदास रखा। जब ये बारह वर्षके हुए, तब इनके विवाहकी तैयारी हुई। विवाहमण्डपमें वर-वधूके बीच अन्तःपट डालकर ब्राह्मण लोग मङ्गलाचरणके श्लोक बोलने लगे। पहले मङ्गलाचरणके पीछे, सभी लोग जब शुभलग्न सावधान, बोले तब रामदासजी सचमुच ही सावधान होकर वहाँसे ऐसे भागे कि बारह वर्षोंतक फिर घरके लोगोंको पता ही न लगा कि वे कहाँ गये। वहाँसे तीन कोसपर गोदावरी नदी है, उसे तैरकर रामदासजीने पार किया और किनारे-किनारे पैदल चलकर वे नासिक पञ्चवटी पहुँचे। पञ्चवटीमें इन्हें भगवान् रामचन्द्रजीके पुनः दर्शन हुए। इस अवसर पर रामदासजीने एक 'करुणाष्टक' द्वारा बड़ी करुणापूर्ण वाणीमें प्रभुकी विनय की। तत्पश्चात् नासिकके समीप 'टाकली' ग्राममें जाकर जहाँ गोदा और नन्दिनीका सङ्गम हुआ है, एक गुफामें रहने लगे। वहाँ इन्होंने त्रयोदशाक्षर (श्रीराम जयराम जय जय राम) मन्त्रका पुरश्चरण प्रारम्भ किया। दैनिक नियमोंका पालन करनेके पश्चात् दिन या रातको जब जो समय मिलता, उसमें ये रामायण, वेदवेदान्त, उपनिषद्-गीता भागवत आदि ग्रन्थ देखा करते थे। इस प्रकार वहाँ तप करते हुए इन्हें तीन वर्ष हो गये। एक दिन रामदासजी सङ्गमपर ब्रह्मयज्ञ कर रहे थे। उधरसे एक विधवा स्त्रीने आकर इन्हें प्रणाम किया। इसपर 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव' ऐसा आशीर्वाद श्री रामदासजीके मुखसे निकल गया, जिसे सुनकर स्त्रीने पूछा—इस जन्ममें या दूसरे जन्ममें? बात यह थी कि उसी स्त्रीके पतिकी मृत्यु हो गयी थी और वह उसके साथ सती होनेको जा रही थी। सती होनेके पूर्व सत्पुरुषोंको प्रणाम करनेकी जो विधि है, उसके अनुसार वह इन्हें तपस्वी महात्मा जानकर प्रणाम करने आयी थी। रामदासजीने कहा। 'अच्छा, शवको यहाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ले आओ। लाशके सामने आते ही रामदासजीने श्रीराम नाम लेकर उसपर तीर्थोदक छिड़का। तुरन्त वह मृत शरीर राम राम उच्चारण करता हुआ जीवित हो उठा। इसप्रकार जो पुनर्जीवित हुए, उनका नाम गिरधर पन्त था और उनकी वह सती स्त्री अन्नपूर्णा बाई थी। अन्नपूर्णासे फिर रामदासजीने कहा: मैंने तुझे पहले आठ पुत्रोंका आशीर्वाद दिया था, अब रामकृपासे दो का और देता हूं। इस आशीर्वादानुसार उस ब्राह्मणदम्पतिको दस पुत्र हुए और उन्होंने प्रथम पुत्र श्री रामदासजीके चरणोंमें अर्पण किया। वही समर्पित पुत्र उद्धव गोस्वामीके नामसे प्रख्यात हुआ।

अस्तु, उस स्थानपर संवत् १६८९ में जब पुरश्चरण समाप्त हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने समर्थ गुरु रामदासजीको दर्शन देकर यह आज्ञा दी कि 'अब तुम सब तीर्थोंकी यात्रा करके कृष्णा नदीके तटपर रहो।' तदनुसार श्री समर्थ रामदासजी तीर्थयात्राको चले। सर्वप्रथम श्री समर्थ काशी गये। वहां से अयोध्या जाकर श्रीराम-मन्दिरमें उन्होंने अपने परमाराध्यके दर्शन किये। तत्पश्चात् गोकुल, वृन्दावन, मथुरा, द्वारका, होकर श्रीनगर बदरीनारायण और केदारेश्वर गये। वहांसे पर्वत शिखरपर ध्यान लगाये बैठे हुए श्वेतमारुतिने इन्हें प्रसादस्वरूप टोप, मेखला, वल्कल, भगवे वस्त्र, जपमाल, पादुका, और कुबड़ी दी। वहांसे उत्तरमानसकी यात्रा करके जगन्नाथ पुरी और पूर्वी समुद्रके किनारेसे लेकर दक्षिण समुद्रके तटपर श्रीरामेश्वर सेतुबन्ध, तथा लङ्काके दर्शनकर, गोकर्ण, महाबलेश्वर, शेषाचल शैल-मल्लिकार्जुन, पञ्चमहा-लिङ्ग किष्किन्धा, पम्पासरोवर, ऋष्यमूक पर्वत करवीर क्षेत्र, परशुराम क्षेत्र, पण्ढरपुर, भीमा-शंकर और त्र्यम्बकेश्वर होते हुए पञ्चवटी लौटे।

इस प्रकार जब तीर्थयात्रा समाप्त हो गयी, तब समर्थ गोदावरीकी परिक्रमा करने निकले। रास्तेमें एक दिन इन्होंने पैठणमें कीर्तन किया और एक अद्भुत चमत्कार दिखलाया, जिससे वहांके लोगोंने इन्हें पहचान लिया, और कहा कि आप तो निश्चिन्त होकर तीर्थोंमें घूम रहें हैं, परन्तु घरमें आपकी माता आपके लिए तड़प रही है। आपके विरहमें रो-रोकर उन्होंने नेत्रोंकी ज्योति खो दी है। यह सुनकर रामदासजी तुरन्त ही माताके दर्शनार्थ जाम्ब गांव गये। द्वारपरसे आवाज दी जय जय रघुवीर समर्थ। श्रेष्ठजीकी धर्मपत्नी यह सुनकर भिक्षा लेकर आयी, पर समर्थने कहा यह भिक्षा मांगनेवाला कोई बैरागी नहीं है। तबतक माताने आवाज सुनी और पूछा 'कौन मेरा बेटा नारायण?' समर्थने कहा—'हां माताजी! मैं ही हूं।' यह कहकर उन्होंने माताके समीप जाकर उनके चरणोंमें मस्तक रख दिया। चौबीस वर्षके दीर्घकालके बाद माता और पुत्रका मिलन हुआ था। समर्थने माताके नेत्रोंपर अपना हाथ फेरा, जिससे खोयी हुई नेत्रज्योति माताको पुनः प्राप्त हो गयी। इसके बाद समर्थने माताको कपिलगीता सुनायी और उनसे आज्ञा लेकर गोदावरीकी परिक्रमाका रास्ता पकड़ा। सप्तगोदावरी-सङ्गमकी सव्य परिक्रमा करके सीधे त्र्यम्बकेश्वर और त्र्यम्बकेश्वरसे पञ्चवटी पहुंच-कर श्री रामचन्द्रजीका दर्शन करनेके पश्चात् समर्थ टाफलीमें आयें, जहां वे उद्धवसे मिले। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें श्री समर्थ जहां-जहां गये वहां-वहां इन्होंने अपने मठ स्थापित किये और प्रत्येक मठमें एक-एक अधिकारी शिष्यकी नियुक्ति की।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस तरह बारह वर्ष तपस्या और बारह वर्ष तीर्थयात्राकर श्री समर्थ सं० १७०१ के वैशाख-मासमें श्री रामचन्द्रकी आज्ञानुसार कृष्णा नदीके तटपर आये। वहाँ माहुली-क्षेत्रमें श्री समर्थ जब रहने लगे, तब बड़े-बड़े सन्त लोग इनसे मिलने आने लगे। बडगाँवके जयराम स्वामी, निगड़ोके रङ्गनाथ स्वामी, ब्रह्मनालके आनन्दमूर्ति स्वामी, मागा नगरके केशव स्वामी और स्वयं श्री समर्थ ये पाँचों मिलकर दास पञ्चायतन कहलाते थे। यहीं श्री तुकारामजी महाराज और चिंचवड़के देव श्री समर्थसे मिलने आये। कुछ काल बाद श्री समर्थ माहुलीसे कृष्णा और कोपनाके प्रीति 'सङ्गम' पर कर्‌घड स्थानमें आये और वहाँसे पाँच मीलपर शाहपुरके समीप पर्वतकी एक गुफामें रहने लगे। शाहपुरमें श्री समर्थने प्रताप मारुति मन्दिरकी स्थापना की और तत्पश्चात् वहाँसे चलकर चाकलखोरे आये, जहाँके सूवेदारने इनसे दीक्षा ली। वहाँसे घूमते-घूमते श्री समर्थ करहाड पहुँचे और फिर वहाँसे मीरज होते हुए कोल्हापुर गये। कोल्हापुरके सूवेदार पाराजी पेतबवैंने इनसे दीक्षा ली और उनकी बहन रखुमाबाईने भी अपने अम्बाजी और दत्तात्रेय नामक दो पुत्रोंके साथ अपनेको समर्थ-चरणोंमें समर्पित कर दिया।

सं० १७०२ से श्री समर्थ रामनवमीका उत्सव करने लगे। सबसे पहला उत्सव मैयूरमें बड़े धूमधामके साथ सम्पन्न हुआ। उसके बाद प्रतिवर्ष अन्यान्य स्थानोंमें क्रमशः श्री समर्थ सम्प्रदायानुसार नवचैतन्यके साथ श्रीराम-जन्मोत्सव मनाया जाने लगा। उन्हीं दिनों महाराष्ट्रमें श्री शिवाजी महाराज हिन्दू धर्मराज्य की स्थापना करनेके उद्योगमें लगे हुए थे। श्री समर्थ रामदास स्वामीकी सत्कीर्ति सुनकर श्री शिवाजीका मन उनकी ओर आकर्षित हो गया और उन्होंने इनको गुरुरूपमें वरण कर लिया। सं० १७०६ में चाफलके समीप शिंगण-वाणीमें श्री समर्थने उन्हें शिष्यरूपमें ग्रहण किया और श्रीरामचन्द्रजीके त्रयोदशाक्षर मन्त्रका उपदेश दिया। सं० १७०७ में श्री समर्थ पालीमें आकर रहने लगे। वह तभीसे सज्जनगढ कहलाने लगा और वहाँ अनेक साधु सन्तोंके अतिरिक्त सुभीतेका स्थान होनेके कारण श्री शिवाजी महाराज बार-बार इनके दर्शनार्थ आने लगे। सं० १७१२ में जब शिवाजी महाराज सातारामें थे, तब श्री समर्थ करजगाँवसे चलकर भिक्षा माँगते हुए राजद्वार पर पहुँचे। महा-राजने इन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करके एक पत्र लिखकर इनकी झोलीमें डाल दिया, जिसमें यह लिखा था कि 'आज तक मैंने जो कुछ अर्जित किया है, वह सब स्वामीके चरणोंमें समर्पित है।' दूसरे दिन श्री शिवाजी महाराज स्वामीके साथ झोली लटकाकर भिक्षा भी माँगने लगे, परन्तु जब श्री समर्थने उन्हें समझाया कि राज्य करना ही तुम्हारा धर्म है, तब श्री शिवाजी महा-राजने अपने हाथमें पुनः शासनसूत्र ले लिया और स्वामीके मन्त्रणानुसार राजकार्य सँभालने लगे।

श्री समर्थ जब तंजावर गये थे, तब वहाँके एक अन्धे कारीगरको आँखे देकर इन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और हनुमानजी-की चार मूर्तियाँ बनानेका काम सौंपा था। वे मूर्तियाँ संवत् १७३८ फाल्गुन कृष्ण ५ को सज्जनगढ पहुँचीं। उन्हें देखकर श्री समर्थको परम सन्तोष हुआ। इन्होंने उसी दिन चारो मूर्तियोंकी विधिपूर्वक स्थापना की। उनकी पूजा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चर्चा होने लगी। फिर माघ कृष्णा ९ के दिन सबसे कह-सुनकर श्री समर्थने महाप्रयाणकी तैयारी की। श्रीराममूर्तिके सम्मुख आसन लगाकर वे बैठ गये। उनके प्रयाणकालीन उद्‌गारोंको सुनकर उद्धव आदि शिष्य घबराये। इसपर श्री समर्थने कहा कि 'आज तक जो अध्यात्म-श्रवण करते रहे, क्या उसका यही फल है? शिष्योंने कहा—'स्वामी? आप सर्वान्तर्यामी हैं, घट-घटके वासी हैं पर आपके प्रत्यक्ष और सम्भाषणका लाभ अब नहीं मिलेगा।' यह सुनकर श्री समर्थने शिष्योंके मस्तकपर हाथ रखकर कहा 'आत्माराम दासबोध इन दो ग्रन्थोंका सेवन करनेवाले भक्त कभी दुखी न होंगे।' तत्पश्चात् इक्कीस-बार 'हर-हर' शब्दका उच्चारण करके श्री समर्थने ज्योंही श्री राम नाम लिया, त्यों ही उनके मुखसे एक ज्योति निकलकर श्री रामचन्द्रजीकी मूर्तिमें समा गयी।

श्री समर्थके प्रसिद्ध ग्रन्थोंके नाम ये हैं—दासबोध, मनोबोध, करुणाष्टक, पुराना दासबोध, आत्माराम, रामायण, ओवी, चौदहशतक, स्फुट ओवियाँ, षड्रिपु, पञ्चीकरण योग, चतुर्थमान, मानपञ्चक, पञ्चमान, स्फुट प्रकरण और स्फुट श्लोक।

श्री समर्थद्वारा स्थापित जो सुप्रसिद्ध ग्यारह मारुति हैं, उनके स्थान ये है,—शाहपुर, मैसूर, चाफलमें दो स्थान डेब्रज, शिरसाल, मनपाडले, बारगाँव, माजगाँव, शिगणवाणी और बाहें।

श्री समर्थने लगभग सात सो मठोंकी स्थापना की थी। उनमें कुछ मुख्य मठोंके नाम ये है—जांब, चाफल, सज्जनगढ, पफली, तंजावर, डोमगाँव, मनपाडले, मीरज, राशिवडे, पण्ढरपुर, प्रयाग, काशी, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, बद्रीकेदार, रामेश्वर, गङ्गासागर आदि।

●

सत्संगकी महिमा

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—अष्टाङ्गयोगका साधन, सांख्य-विचार, धर्मानुष्ठान, वेदादिशास्त्रोंका स्वाध्याय, तपस्या, त्याग, इष्टकर्म (यज्ञ-यागादि), आपूर्तकर्म (बगीचे लगाना, पोखरे खुदवाना आदि), दक्षिणा-दान, व्रतोंका अनुष्ठान, यज्ञकर्म, छन्द (सामगान), तीर्थसेवन, यम (ब्रह्मचर्य आदि) तथा नियम (शौच-सन्तोष आदि) ये सभी उत्तम हैं, किन्तु इनमेंसे कोई भी मुझे उस तरह वशीभूत नहीं करता है, जिस तरह सत्संग कर सकता है। सत्संग समस्त दूसरे संगों (आसक्तियों) का निवारण करके केवल मुझमें प्रीति उत्पन्न कराता है; अतः मैं उसके वशीभूत हो जाता हूँ।

(श्रीमद्भाग० ११।१२।१-२)

●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
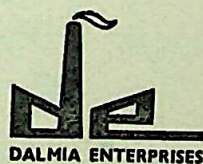
नीतिवचनामृत

१

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः॥

दुर्जन को तजि दीजिये होय जदपि विद्वान।
मणिभूषित फणिराज कब देत न भीति महान॥

२

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

अजर अमर इव राखिये धन विद्या पर ध्यान।
खड़ी मीच पकड़े शिखा—करिय धर्म यह जान॥

३

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

नव-यौवन धन-संपदा प्रभुता अस अविचार।
इक एक हु अनरथ करै कहा होय जहँ चार॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूक्ति-सुधा

अभिनवनवनीत - स्निग्धमापीतदुग्धं
दधिकणपरिदिग्धं मुग्धमङ्गं मुरारेः ।
दिशतु भुवनकृच्छ्रच्छेदितापिच्छगुच्छ-
च्छवि नवशिखिपिच्छैर्लाञ्छितं वाञ्छितं वः ॥

नव नवनीत की सलोनी स्निग्धता है जहाँ
पान किये है जो इष्ट पेय मिष्ट क्षीर का,
चमक रहे हैं लगे देह में दही के कण
मुग्ध कर अंग सो मुरारि बलवीर का ।
गुच्छ-सी तपिच्छ के है छवि अभिराम श्याम
क्षण में हरण करे त्रिभुवन पीर का,
मोर-पिच्छ लांछित जो वाञ्छित तुम्हें दे वह
अनुपम बालरूप मोहन अहीर का ॥

श्रीकृष्ण जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, ढुण्ढिराज, वाराणसी-१ में मुद्रित एवं प्रकाशित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri